वर्ष ६, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

ज्येष्ठ पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

सीता-अन्वेषण

Gita Press, Gorakhpur.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक ६ पूर्ण संख्या ६६

वेदोपदेश

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोन्तरिक्षं पर्येको बभूव।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ १ ॥

इन में से इस पृथ्वी के ऊपर एक रहता है। अन्तरिक्ष में एक व्यापता है इन में से द्युलोक को जो एक धारण कर्ता आधार देता है। अन्य देव सब दिशायें रक्षण करते हैं ॥ १ ॥

यो विद्यात् सूत्रं विगतं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥ २ ॥

जिस में यह प्रजायें पोई हुई हैं उस तने हुए सूत्र धागों को जो जानता है और जो धागे का धागा जानता है वह बड़े ब्रह्म को जानता है ॥ २ ॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमा।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३ ॥

मैं तना हुआ धागा जानता हूं। जिस में यह सृष्टि परोई गई है वह धागे का धागा मैं जानता हूं। और जो बड़ा ब्रह्म है वह भी मैं जानता हूं ॥ ३ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वैब्रह्म विदो विदुः ॥ ४ ॥

तीन रस्सियों–गुणों से घेरा हुआ नौ द्वारों वाला कमल है उस में जो आत्मा वाला पूज्य है उसी को ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं ॥ ४ ॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ५ ॥

निरिच्छ धैर्य वाला, अमर, स्वयं सिद्ध तत्व से तृप्त, कहीं से भी न्यून नहीं ऐसे धैर्य वाले वृद्धावस्था से रहित जवान उसी आत्मा को जानने वाला मृत्यु से नहीं डरता है ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

पश्येन्नान्यद्वदेन्नान्यद्ध्यायेन्नान्यत्कदाचन ।
ब्रह्माद्वैतं सदापश्येत् योगिनं तं नमाम्यहम् ॥

सेवा निष्ठा ।

मंसाराम– महाराज ! भागवत आदि पुराणों में नव प्रकार की भक्ति कही है। उनमें सेवा, पूजा और दास निष्ठा ये तीन भिन्न भिन्न कहीं हैं परन्तु मुझे इन तीनों में कुछ भेद नहीं जचता, फिर शास्त्र में इनको अलग २ वर्णन करने को क्या कारण है। कृपा करके इन तीनों का भेद बताइये और सेवा निष्ठा का क्या स्वरूप है, यह विस्तार पूर्वक समझाइये और इस निष्ठा के भक्तों की कथायें भी सुनाइये !

मस्तराम– भाई ! अनुक्षण सेवा करते हुए अपने स्वामी के संमुख रहना, क्षणमात्र की विश्लेषता-वियोग सह न सका समय समय पर सेवा करना और सेवा भी मन, वाणी और कर्म से हो, यह सेवा निष्ठा का स्वरूप है। पूजा निष्ठा से इस सेवा निष्ठा का यह भेद है कि पूजा निष्ठा केवल षोडशोपचार से की जाती है, उसका वर्णन मैं तुझ से प्रतिमा और अर्चा निष्ठा में कर चुका हूं, उसमें अनुक्षण संमुख रहने का नियम नहीं है और उपा-

सक वियोग भी सहसक्ता है। और दास निष्ठा से यह भेद है कि दास नाम किंकर का है। किंकरताई समीप रहकर अथवा दूर रह कर दोनों प्रकार से की जा सक्ती है। दास अपने स्वामी की प्रसन्नता पर दृष्टि रखता है, हठ किसी बात में नहीं करता।

हे मंसाराम! सेवा निष्ठा की महिमा कोई वर्णन नहीं कर सक्ता, क्योंकि इस निष्ठा से पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मा का सामीप्य प्राप्त होता है। भक्ति संप्रदायवेत्ता जिनको नित्य मुक्त कहते हैं, वे इसी निष्ठा से उस पदवी को प्राप्त हुए हैं। भागवत का वचन है कि देवता हो, राक्षस हो, मनुष्य हो, यक्ष हो, गंधर्व हो, कोई हो, नारायण की चरण सेवा से परम कल्याण को प्राप्त होता है, और भी कहा है कि हे भगवन्! आपके चरण नौका के सदृश्य हैं, उन चरणों की सेवा में जिनका मन लगा है, वे इस संसार समुद्र को गोपद जल के समान तर जाते हैं। कपिल देव भगवान् का वचन है कि जो मेरे चरणों की सेवा करते हैं, उनको संसार का दुःख कभी, कहीं, किंचित् भी नहीं होता। सप्तम स्कंध भागवत में लिखा कि तब तक ही भय, शोक, लोभ, और स्पृहा आदि दुःखदायक होते हैं, जब तक भगवत् सेवा में मन नहीं लगता, भगवत् सेवा में मन लगते ही भय शोकादि दूर भाग जाते हैं।

हे मंसाराम! शास्त्रों में जीव और ईश्वर का शेष शेषी भाव जो लिखा है, इसका निर्णय इस प्रकार है। जो वस्तु किसी दूसरे के निमित्त हो, उसका नाम शेष है और वह वस्तु जिसके निमित्त है, वह शेषी है, जैसे राजा का राज्य, सैन्य, प्रजा और सम्पत्ति आदि राजा के निमित्त हैं, इसलिये राजा शेषी है और राज्यादि सब शेष हैं। अथवा जैसे सवार शेषी है और घोड़ा, सहीस आदि शेष हैं। जब क्रम से इन शेष शेषी का विचार किया जाता है, तो परिणाम में भगवत् पर शेषी होना समाप्त होता है, क्योंकि ब्रह्मांड में गुप्त या प्रकट जितनी वस्तुयें देखने में अथवा सुनने में आती हैं, वे सब भगवत् के लिये हैं और भगवत् की हैं। भगवत् से अधिक कोई नहीं है। गीता में भगवान् का वचन है कि अर्जुन! मुझ से अधिकतर कुछ नहीं है, जैसे सूत्र में मणि इसी प्रकार मुझ में सब ओत प्रोत हैं।

हे मंसाराम! जैसे शेषी का पद भगवत् पर समाप्त है, इसी प्रकार शेष की पदवी शेषनाग पर समाप्त होती है, क्योंकि जब सब वस्तुयें भगवत् की हैं, तो सब से अधिक जो वस्तु है, वह भी भगवत् की है, सब शेष वस्तुओं में विचार कर देखा जाय, तो जो अतिशय करके भगवत् सम्बन्धी हो, वह ही अतिशय शेष है। ये शेष के लक्षण शेषनाग जी में पाये जाते हैं क्योंकि उनका कोई अंग ऐसा नहीं है जो कि भगवत् सेवा से रहित हो। शेषनाग का शरीर तो भगवान् की शय्या है, शरीर का कोमल भाग तोशक रूप है, सहस्र फण चंदये हैं, सहस्र फणों की मणि दीप मालिका है, विषभरे श्वास को रोक कर शीतल श्वास लेना पंखा है। शेष जी अपनी समस्त जिह्वाओं से भगवत् का नाम लेते हैं, गुप्त और प्रकट नेत्रों से अनुक्षण अनन्तगुण शोभा धाम, भगवत् के रूप अनूप का दर्शन करते हैं, नासिका से भगवत् शरीर की सगुन्ध और तुलसी सूंघते हैं। सर्पों के कान नहीं होते, आँख से ही सुनते हैं, इसलिये शेषनाग जी भगवत् के श्वास से जो वेद और मन्त्र निकलते हैं, उनको मूलपद अर्थ सहित मन में धारण करते हैं। तात्पय यह है कि शेष जी के सब अङ्ग भगवत् सेवा के लिये हैं और इसी में लगे रहते हैं, इसलिये उनका नाम शेष

विख्यात है और शेष की पदवी उन पर समाप्त है। हे मंसाराम! इस कथन का प्रयोजन यह है कि भगवत् की सेवा ऐसी हो कि गुप्त और प्रकट कोई अंग सेवा से रहित न हो। जिस की सेवा इस अवस्था को पहुंच जाय, उसी का नाम शेष है, वह ही नित्यमुक्त है और वह ही समीपी सेवक और पार्षद है, उसी का नाम सामीप्य मुक्ति वाला है।

हे मंसाराम! रामानुज संम्प्रदाय में कैंकर्य शब्द जो विख्यात है, उसका तात्पर्य भगवत् सेवा से है। उसका भाव यह है कि प्रभात से लेकर दूसरे प्रभात तक यह मनुष्य जिस अंग से अपने तन की सेवा करता है वह सब भगवत् सेवा के सम्बन्ध से विचार कर करे, अपने निमित्त कुछ न समझे। जैसे रसोई करता है, तो चौका देना, बर्तन माजना, जल लाना और रसोई बनाना, इस सब में भगवत् की रसोई का विचार हो अथवा जैसे घोड़ा खरीदना है, तो भगवत् की सवारी के लिये खरीदे, अपनी, सवारी का विचार करके न खरीदे। और जब घोड़े पर सवार हो, तो उस समय यह ध्यान करे कि भगवत् घोड़े पर सवार हैं और आप साईस की भांति साथ है। अथवा कोई पोशाक बनानी हो, तो भगवत् के निमित्त हो, अपने निमित्त न हो, पहिले भगवत् को पहिनावे और पीछे भगवत् का प्रसाद आप धारण करे। इस प्रकार दिन या रात में जो २ काम हो, सब भगवत् के उद्देश से करे। अपने उद्देश से कुछ न करे। यदि त्यागी हो, तो जो कुछ वन में या पहाड़ में शरीर से कर्म हो, वह सब भगवत् सेवा के निमित्त विचार कर करे, अपने शरीर की मुख्यता उठा देवे। यह सेवा चाहे भगवत् मूर्ति की करे या मानसध्यान में करे। विश्वास रूप अनूप भगवत् का ऐसा हो कि मानों वह अर्पण की हुई पोशाक या वस्तु भगवत् ने अंगीकर करके धारण करली और कृपा करके प्रसाद मुझ को दिया, केवल बात का ही जमा खर्च न हो। हे मंसाराम! इस सेवा के संबन्ध में पूर्व में भी बहुत कुछ कह आया हूं। कहां तक कहूं, तात्पर्य यह है कि अधिक न हो सके तो जितना सामान और काय अपने सुख और आराम के लिये मनुष्य करे, वह सब भगवत् के निमित्त किया करे। यद्यपि वह सब काम मनुष्य के आराम के लिये ही हो जाता है परन्तु भाग्य की हीनता के वश मनुष्य भगवत् का विचार और ध्यान नहीं करता। एक भक्त इस प्रकार भगवत् से प्रार्थना किया करता था।

हे श्रीकृष्ण स्वामी! अन्तर्यामी! वैकुण्ठ वासी! हे करुणा कर! हे पापीघहर! यह मन बड़ा दुष्ट है, इस भाग्य हीन मन को मैंने बहुत कुछ समझाया, समझाते थक गया परन्तु यह टस से मस न हुआ! लाख समझाया परन्तु इसकी समझ में कुछ न आया! मुझे, अपने पुरुषार्थ का किंचित् भी भरोसा नहीं है, आप सब कुछ कर्त्ता धर्त्ता हैं। इस मन को आप अपने चरण कमल में लगा लीजिये, ऐसा लगा लीजिये कि आपके चरणारविन्द छोड़ कर किसी अन्य वस्तु में न लगे, आपके ही गीत गावे, आप का ही ध्यान करे, आप के सर्वत्र दर्शन करे। आपकी नाम सर्वदा जपे, आपके रूप अनूप की माधुरी में मग्न रहे! आप ही इसको अपने चरणों में लगा सक्ते हैं, आप सर्वशक्तिमान हैं, मुझ में कुछ सामर्थ्य नहीं है, जो कुछ मुझ में सामर्थ्य है, आपका ही है, आप से ही प्रार्थना करता हूं कि पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान आप के इस चरित्र का समाज मेरे हृदय में उदय बना रहे और सब रसिक समाज को आनन्द दायक हो!

परमर सिक और रिझवार श्रीव्रजचन्द्र महाराज को यह समाचार मिले कि बरसाने में

भानुनन्दिनी ऐसी परम सुकुमारी और शोभाधाम हैं कि तीनों लोकों में उनकी उपमा का कोई नहीं है और यह भी सुना कि संझा के समय नित्य फूल लेने के लिये फुलवाड़ियों में आया करती हैं। दर्शन की अति उत्कण्ठा हुई और जिस की शोभा से लज्जित होकर नन्दन वन आकाश में जा छुपा है, उस बाग में श्रीनन्दकिशोर ब्रजचन्द्र आ पहुंचे और जैसे सब फूल खिल खिल लटक रहे थे, उसी प्रकार उसी बाग के फलों में सब अंगों से नयन होकर बाट देखने लगे! अचानक उत्तर की दिशा से एक सुख और शोभा की मूर्त्ति हजारों सखियों के बीच में दिखायी दी। अपने मुख के प्रकाश से समस्त बाग और सब दिशाओं को प्रकाश करती हुई और देखने वालों को बेसुधि करती हुई आ रही है। वस्त्राभूषण ऐसी चमक दमक और सजावट और सुन्दरताई सहित तन में शोभित हैं कि मानों शोभा, छवि और मनोहरता आदि ने पोशाक और आभूषण का स्वरूप धारण करके मन मोहन महाराज के मन को मोहित करने के लिये नवलकिशोरी महारानी के अंग अंग पर वास किया है। यद्यपि विश्वमोहन महाराज रूप राशि ने ब्रज-नागरी के देखने के लिये आगे चलने की इच्छा की है परन्तु कुछ ऐसी छाया और तेज प्रियाजी की शोभा का मन पर छाया है कि वहां ही खंडे रह गये हैं, इतने में ब्रजचन्द जी चित्त चोर मनमोहन महाराज के आने की खबर पाकर अपनी सखियों सहित हंसती खेलती और फलों को तोड़ती समीप आ पहुंची हैं। क्या देखती हैं कि एक नवयौवन श्याम सुन्दर स्वरूप वाला बहु मूल्य आभूषण और पोशाक से सजा हुआ ऐसे सज धज के साथ खड़ा हुआ है कि जिस पर करोड़ों कामदेव और शृंगार न्योछावर होते हैं, यकटक नेत्र लगाये हुए, देखने में अति आसक्त होकर मन से बेहोश और शोभा के मादक में छका हुआ मतवारा सा हो रहा है। दोनों के चार नयन होते ही दोनों बे सुध हो गये हैं और किसी को अपनी खबर नहीं है कि कहां हैं। ब्रह्मादिक देवता ब्रह्माणी आदि देवियों सहित जो वृक्षों के पत्तों में छुपी हुई सैर देख रही थीं, दोनों की यह दशा देख कर दंग रह गयी हैं, किसी को तन मन की खबर न रही है!

कथा लक्ष्मी जी की

लक्ष्मी जी जगज्जननी भगवत् की परम प्रिया हैं। इनकी भगवत् की सेवा में मुख्य पदवी है। यह एक क्षण भी भगवच्चरण सेवा से अलग नहीं होती। यद्यपि लक्ष्मी जी और भगवत् में कुछ भेद नहीं है, नाम मात्र के दो अलग २ दिखायी देते हैं। जिस प्रकार शब्द और अर्थ की वास्तव में एकता है परन्तु कहने मात्र को अलग २ हैं और युगल उपासकों ने दोनों को बाद से एक ही सिद्ध कर दिया है, फिर भी प्रकट में भगवत् तो स्वामी हैं और लक्ष्मी जी सेवा करने वाली हैं, इसलिये शास्त्रकारों ने लक्ष्मी जी को सेवा निष्ठ भक्तों में लिखा है, दूसरे भक्तों के सदृश नहीं, लक्ष्मी जी का निज चरित्र देखने से जानने में आता है कि जितने चरित्र भगवत् के शास्त्र और पुराणों में लिखे हैं, वे सब लक्ष्मी जी और भगवत् से मिश्रित हैं, इस-लिये सब चरित्र देखने से जानने में आता है कि जितने चरित्र भगवत् के शास्त्र और पुराणों में लिखे हैं, वे सब लक्ष्मी जी और भगवत् से मिश्रित हैं, इसलिये सब चरित्र जो वेद या शास्त्र में लिखे हैं, वे सब लक्ष्मी जी के चरित्र समझने चाहिये इसी प्रकार राधिकाजी, सीताजी और रुक्मिणी

जी के चरित्रों का वृत्तान्त है, किंचित् भी भेद नहीं है. मात्र उपासक की उपासना और विश्वास का भेद है। सच कहा है:-

कु०-लक्ष्मी भगवत् एक है, यथा शब्द शब्दार्थ।
नहिं रंचक भी भेद है, यह ही है वेदार्थ॥
यह ही है वेदार्थ, शब्द में अर्थ ज्यों छुपा।
नाम रूप यह विश्व, तत्त्व परमार्थ ढकात्यों॥
नाम रूप दे त्याग, तत्त्व सोहं! लख पावत।
भोला! भेद न देख, एक है लक्ष्मी भगवत॥

कथा शेषजी की

सेवा निष्ठा शेषजी पर समाप्त हुई है, यह बात प्रथम ही कह चुका हूं। अब दुबारा कहने की आवश्यकता नहीं है। शेषजी को जगत् के उद्धार और उपकार में इतनी प्रीति है कि सदा भगवद्भजन में लगे रहते हैं और वेदान्त श्रुतियों का उपदेश करते रहते हैं। इन्होंने कई शास्त्र नवीन रच कर विख्यात किये हैं, जो संसार समुद्र से तारने को दृढ़तर सेतु हो गये हैं। उनमें एक व्याकरण शास्त्र ऐसा है कि यदि वह न होता, तो वेद और शास्त्रों का अर्थ जानने में नहीं आता। दूसरा पातंजल शास्त्र ऐसा है कि जिससे योगमत और ज्ञान भक्ति ने प्रवृत्ति पायी है। तीसरा साहित्य शास्त्र है। रसभेद और काव्य इत्यादि उसी के प्रभाव से प्रवर्त्तमान हुए हैं। जब २ धर्म की हानि होती है, तब २ शेषजी अवतार धारण करके परम धर्म भगवद्भक्ति का प्रचार करते हैं और सब विघ्न दूर करते हैं। शेषजी के चरित्रों को भगवच्चरित्र ही समझना चाहिये। हे मंसाराम! इनकी महिमा वेद और शास्त्र वर्णन नहीं कर सके, तो मुझ सरीखे मनुष्य की तो सामर्थ्य ही क्या है कि एक अक्षर भी लिख सकूं शेष जी के नाम अनन्त हैं। 'यथा नाम तथा गुणाः' इनके चरित्र भी अनन्त हैं। इनके चरित्रों का अन्त कौन पासका है। कोई नहीं पा सका। सच कहा है:-

कु०-ज्ञानी ध्यानी शेष सम, जग में नांहीं अन्य।
हरि चरणन में मन लगा, भगवद्भक्त अनन्य॥
भगवद्भक्त अनन्य, काम दूजा नहिं करते।
मन, वाणी अरु कर्म, ध्यान भगवत् का धरते॥
भोला! कर हरि गान, त्याग दे अन्य कहानी।
करते जो हरि भक्ति, धन्य वे ध्यानी ज्ञानी॥

कथा विष्वक्सेन आदि पार्षदों की

१ विष्वक्सेन, २ सुसेन, ३ बल, ४ प्रबल, ५ जय, ६ विजय, ७ भद्र, ८ सुभद्र, ९ नन्द, १० सुनन्द ११ चण्ड, १२ प्रचण्ड, १३ कुमुद, १४ कुमुदाक्ष, १५ शील, १६ सुशील ये भगवत् के षोडश द्वारपाल मुख्य हैं। ये सर्वदा भगवत् की सेवा में लगे रहते हैं। भगवत् के पार्षद असंख्य हैं। पृथिवी के रज की गिनती कदाचित् कोई कर भी सके परन्तु भगवत् के पार्षदों की गिनती नहीं होसक्ती। उपरोक्त शोलह पार्षद नामी हैं, उनके नाम तुझे बताये हैं। इनकी भगवत् सेवा में ऐसी दृढ़ प्रीति है कि भगवत् सेवा के सिवाय किसी समय दूसरा काम नहीं करते। ये भगवत् स्वरूप को निरखि २ सेवा करते हैं और रूप के आनन्द में मग्न रहते हैं, कभी अलग नहीं होते। ये सब आवागमन के चक्र से मुक्त हैं और इन सब को भगवत् की कृपा से यह सामर्थ्य है कि करोड़ों ब्रह्मांड रच सके हैं, पालन कर सके हैं, पालन कर सके हैं और फिर संहार कर सके हैं। अधिक क्या कहूं, भगवत्पार्षद भगवत् रूप हैं, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है।

मंसाराम–महाराज ! जब पार्षद जन्म मरण से रहित हैं, तो सनादिकों के शाप से जय विजय पार्षद के तीन जन्म किस कारण से हुए। जन्म होने से तो यह ही सिद्ध होता है कि वे आवागमन के चक्र से रहित नहीं है।

मस्तराम– भाई ! मुक्त पुरुष जो मनुष्य शरीर धारण करके पृथिवी पर रहते हैं, इससे उनका आवागमन सिद्ध नहीं होता। जैसे नारद, सनकादि और वसिष्ठ आदि शरीर धारण करते हैं और उनके सिवाय भगवत् भी प्रयोजन के लिये शरीर धारण कर लेते हैं। यदि भगवत् का आवागमन मानाजाय, तो पार्षदों का भी माना जा सके। सिवाय इसके ऐसा संयोग कभी नहीं हुआ, कि पार्षदों का जन्म तो हुआ हो और भगवत् का अवतार नहीं हुआ हो किन्तु जब २ पार्षदों का जन्म हुआ है, तब २ भगवत् का अवतार भी हुआ है। इससे यह निर्णय हुआ कि जिस प्रकार जब कोई राजा किसी देश को जाता है, तो तम्बू, डेरा और नौकर आदिकों को आगे भेज देता है, इसी प्रकार जब कभी भगवत् का पूर्ण अवतार होने को होता है, तो भगवान् को जो चरित्र करना होता उसकी सामग्री आगे भेज देते हैं। यह बात वाराह संहिता से प्रकट है। जैसे भगवत् अपनी इच्छा से इस संसार में अपना रूप प्रकट कर लेते हैं, इसी प्रकार पार्षद भी प्रकट कर लेते हैं, इसमें संदेह ही क्या है। एक बात और भी है कि भगवत् इच्छा सब से प्रबल है। यदि केवल भगवत् इच्छा से इस संसार में देह धारण करके भगवत् इच्छानुसार कार्य करके पार्षद उसी लोक में चले गये, तो क्या इससे आवागमन सिद्ध हो गया। जैसे भगवत् के जन्म कर्म दिव्य हैं इसी प्रकार पार्षदों के जन्म कर्म दिव्य हैं, अर्थात् लीला मात्र है।

मंसाराम– महाराज ! ठीक है, भगवत्पार्षदों के जन्म अलौकिक हैं। परन्तु यह तो बताइये कि जब भगवत् सेवा के उपासक क्षणभर का भी भगवत् का वियोग नहीं सह सके, तो जय विजय से भगवत् सेवा का वियोग कैसे सहा गया ? जैसे वन गमन के समय श्रीरघुनन्दन स्वामी ने लक्ष्मण जी को अयोध्याजी में रहने की आज्ञा दी, तो भगवन सेवा के उपासक लक्ष्मणजी ने भगवत् की आज्ञा स्वीकार न की और वे साथ ही वन को गये, इसी प्रकार जय विजय को भी भगवान् का वियोग सहन करना उचित नहीं था, उन्होंने कैसे सह लिया।

मस्तराम– भाई ! यह तेरी शंका ठीक है। उत्तर इसका इतना ही बहुत है कि जय विजय ने जगत् का उपकार विचार कर भगवान् का वियोग सह लिया। उन्होंने विचार किया कि हमारे वियोग सहने से भगवच्चरित्र संसार में फैलेंगे, जिनको गा गा कर करोड़ों जीव भगवत् सेवा में लग जायंगे, इससे अच्छा और क्या है। यह उनका विचार ठीक ही था, क्योंकि भगवद्भक्तों के सिवाय कितने ही राक्षस, दैत्य और परमपातकी उनकी कथा सुन कर भगवत् को प्राप्त हो चुके हैं और आगे होंगे। मंसाराम ! भगवत् और भगवद्भक्तों की लीला अपार है, भगवत्भक्त ही इस बात को जानते हैं, अन्य की समझ में आना कठिन है। सच कहा है:–

कुं–भगवत् भगवत् जननन की, महिमा अमित अपार।
भक्त जानते मर्म यह, अनयन जाननहार॥
अन्यन जाननहार, देह हरिपार्षद धरते।
करते भगवत्कार्य, करत हू कुछ नहिं करते॥
भोला ! दौड़त रेल, वृक्ष पंखें हैं जावत।
भगवत् जन्मत नाहिं, दीखते जन्मत भगवत्॥

कथा हनुमान जी की

हनुमान जी के चरित्र, उनकी कथा और भक्तिभाव ऐसे पवित्र हैं कि रघुनन्दन स्वामी स्वयं उनको सुन कर प्रसन्न होते हैं। श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरित्र संसार समुद्र से उतरने के लिये दृढ जहाज़ हैं और हनुमान जी के चरित्र उन जहाजों के लिये बादवान के सदृश हैं, हनुमान जी की महिमा किस से वर्णन हो सकी है, सारा ब्रह्मांड उनकी सेवा को धन्य २ करता है। इन्होंने सीता महारानी जगज्जननी को भगवत् का संदेश दिया, रावण के वध होने की भविष्य बात सुनायी, रघुनाथ जी को आकर सीता जी के समाचर सुनाये और लंकाके गुप्त स्थानों का वर्णन किया, लक्ष्मण जी के लिये संजीवनी बूटी लाये, मृत्यु से बचाया, भरत, शत्रुघ्न और अयोध्यावासियों को भगवत् के आने का समाचार सुना कर उपकार किया, रावण का वध करा कर देवताओं को आनन्द दिया, धन्य२ कहलाया, भगवच्चरित्र संसार में विख्यात करके सब संसारी जीवों को परम पद का अधिकारी किया। सारांश यह है कि ऐसा कोई नहीं है, जिसके लिये हनुमान जी ने न किया हो। शास्त्रों में बहुत प्रकार की विद्याओं में हनुमान जी का आचार्य होना लिखा है और गान विद्या, ब्रह्म विद्या, शस्त्र विद्या, व्याकरण और साहित्य शास्त्र में तो विशेष करके हनूमान जी का आचार्यत्व प्रसिद्ध है।

हे संसाराम! हनूमान जी भी अवतार हैं। इन्होंने केवल रघुनन्दन स्वामी की सेवा के निमित्त अवतार लिया है। यद्यपि सब निष्ठाओं में उनका विश्वास दृढ़ है, फिर भी सेवा निष्ठा में इनका वर्णन इसलिये किया है कि, यह सर्वदा सेवा में लगे रहते हैं और स्वयं भगवत् ने इनकी सेवा की बड़ाई की है। भगवन्नाम में हनुमान जी को ऐसा विश्वास है कि जब श्रीरघुनन्दन स्वामी लंका जीत कर अयोध्या जी में आने लगे तो विभीषण ने एक मणियों की माला दी जिसके समान कहीं दूसरी संसार में नहीं थी समुद्र से मांग कर भगवत् के भेट के लिये लेगये जिस समय रघुनन्दन महाराज राज सिंहासन पर विराजमान हुए, तब भेट की। जितने देवता और राजा आदि वहां थे, सब को उसके मिलने की चाह हुई। भगवत् अन्तर्यामी ने विचार किया कि माला एक है और इसके चाहने वाले अनेक हैं, तो ऐसे को इसे देना चाहिये कि जिसको इसकी चाहना न हो। ऐसा विचार कर भगवत ने हनूमान को पहिना दी। हनूमान जी ने विचार किया कि प्रकट देखने में कोई बात भगवद्भक्ति की इस माला में दिखायी नहीं पड़ती, सम्भव है कि कोई बात भीतर होगी। ऐसा विचार कर उन्होंने एक नग तोड़ा और जब उसमें भगवन्नाम न देखा, तो दूसरे नागे को तोड़ा, उसमें भी नाम न पाया, इसी प्रकार बहुत नागे तोड़ डाले। जब हनुमान जी नागा तोड़ते थे, तो चाहने वालों का मन टूटता था और वे मन ही मन में कहते थे कि भगवत् ने कैसे मूर्ख को अमूल्य माला देदी है कि जो उसके जवाहरातों का मोल नहीं जानता और न जिसको उनकी परख है। नितान्त किसी एक से न रहा गया, कहने लगा 'आप इन दुर्लभ मणियों को क्यों तोड़े डालते हैं, हनुमान जी बोले। मणियों के भीतर राम नाम देखता हूं!, उसने कहा 'महाराज! कहीं वस्तुओं के भीतर राम नाम होता होगा! हनुमान जी ने कहा 'भाई यदि इनके भीतर राम न नहीं है, तो ये किस काम के है उसने कहा 'यदि आप को ऐसा विश्वास है, तो आपके भीतर भी राम नाम होना चाहिये!' हनुमान जी ने कहा अवश्य होना

चाहिये, यह कह कर अपनी छाती का चर्म उखाड़ कर दिखलाया, तो रोम रोम में राम नाम लिख रहा था। सब को हनुमान जी की भक्ति और उनके विश्वास का निश्चय हुआ।

हे मंसाराम! महाभारत के युद्ध में हनुमान अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान थे। जो उपदेश भगवान् ने अर्जुन को दिया, वह उन्होंने भी सुना। अर्जुन से भगवान ने पूछा, तो उसे एक अक्षर भी याद न रहा, हनुमान जी ने समस्त गीता सुनादी। भगवान् ने टीका करने की आज्ञा दी, हनुमान जी भगवत की आज्ञानुसार गीता पर तिलक किया और जगत् में उसका प्रचार किया। यह बात गीता माहात्म्य से प्रकट है और महा भारत के समय यद्यपि आप भगवत् अर्जुन के सहायक थे परन्तु हनुमान जी का भी प्रताप ऐसा था कि स्वयं भगवत् ने उनकी बड़ाई की। यह बात महाभारत में प्रसिद्ध है॥

कुं-सुन्दर यश हनुमान का, पढ़त करत कल्याण।
एक नारि व्रत राम तो, पूर्णपती हनुमान॥
पूर्ण पती हनुमान, ऊर्ध्वरेता योगेश्वर।
राम काज के हेतु, ग्यारह अवतार महेश्वर॥
रोम रोम में राम, नाम दिखलाया अन्दर।
भोला! गा हनुमान परम पावन यश सुन्दर॥

स्वर साधन।

दक्षिण तथा वाम नथुने में सूर्य तथा चन्द्र की गति ध्यान, विश्वास तथा रुचि के साथ अवलोकन कीजिए। बुद्धि, तर्क तथा इच्छा द्वारा संकल्पों को दूर कीजिए तथा प्राण और मन को शान्त रखिए। वे पुरुष जो श्वास का अभ्यास करते हैं तथा सूर्य और चन्द्र नाड़ी को अपने २ स्थानों में रखते हैं वे त्रिकाल दर्शी हो जाते हैं।

ईश नाड़ी में श्वास का आना अमृत है इससे संसार का पोषण होता है। पिंगला नाड़ी में सृष्टि की उत्पत्ति है। मध्य में सुषुम्ना नाड़ी की गति भयंकर है और इसके सब काम बुरे हैं। प्रत्येक स्थान में शुभ कार्यों में बांई नाड़ी शक्ति प्रदान करती है। यात्रा करने में बाँई नाड़ी शुभ है घर लूटने में दक्षिण नाड़ी शुभ है। चन्द्रमा शम रहता है सूर्य विषम रहता है। चन्द्रमा स्त्री है, सूर्य मनुष्य है। जिस समय चन्द्र नाड़ी की गति हो तो दुष्ट काम कीजिए। जब सुषुम्ना नाड़ी की गति हो तो योग तथा मुक्ति के काम कीजिए।

शुक्लपक्ष में चन्द्र नाड़ी की गति प्रथम आरम्भ होती है। शुक्ल पक्ष के प्रथम दिवस से चन्द्र तथा सूर्य नाड़ी की गति बारी २ तीन २ दिन रहती है।

चन्द्र तथा सूर्य नाड़ियाँ प्रत्येक नाड़ी दो २ घण्टे शुक्ल तथा कृष्ण समय में गति करती हैं। क्रम से बारी २ दिन रात ये नाड़ियां चलती हैं। प्रत्येक घड़ी (२४ मिनट) में पांचों तत्वों की गति होती है प्रतिपदा से दिन आरम्भ होते हैं। जब यह क्रम उलट जाता है तो प्रभाव उलटा होता है।

शुक्लपक्ष में बांई नाड़ी शक्तिमान होती है, कृष्णपक्ष में दक्षिण नाड़ी शक्तिमान होती है। योगियों को शुक्लपक्ष से आरम्भ करके इन दोनों नाड़ियों की गति की क्रमानुसार चलने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि सूर्योदय के समय ईश नाड़ी से चले और दिन भर गति रहे और सायंकाल के समय पिंगला चलना आरम्भ करे तथा रात्रि भर यही गति रहे, तो बड़ा लाभ होता है, विपरीत होने

से परिणाम बुरा होता है।

समग्र दिन चन्द्रनाड़ी चलने दो, समग्र रात्रि सूर्य नाड़ी चलने दो। जो ऐसा अभ्यास करता है, बड़ा योगी होता है। नवीन साधक रुई नाक में भर कर अभ्यास आरम्भ करे। दिन में दायां नथुना रुई से भर दे, रात्रि में बायाँ नथुना रुई से भरदे। इसका अभ्यास कीजिए। अपूर्व चमत्कार दिखाई पड़ेगा।

जब श्वास दक्षिण या बांई नाड़ी से चलती हो तो यदि यात्री प्रथम क़दम जिस नाड़ी से श्वास चलती हो उसी के हिसाब से पृथ्वी पर रक्खे तो यात्रा में सफलता होगी।

शुभ चन्द्रमा–जिस समय इड़ा नाड़ी अथवा बाएं नथुने से श्वाँस चलता हो उस समय यह काम करना शुभ है। दूरस्थ यात्रा में, आश्रम अथवा प्रासाद में प्रवेश करने में, धन उपार्जन में, विवाह में, बीज बोने में, मन्त्र स्मरण करने में, तथा रोग निदान में। जिस समय इड़ा नाड़ी से श्वास चलती हो चाहे दिन हो अथवा रात्रि हो, जो शुभ कार्य किया जायगा सिद्ध होगा।

सूर्य नाड़ी–जिस समय सूर्य तथा दक्षिण श्वास चलती हो उस समय निम्न कार्य करना चाहिए। भोजन, स्नान, कलह, युद्ध, भयंकर काम शत्रुता, द्यूत तथा खेल कूद आदि। भोजन करने के बाद तुरन्त सूर्य नाड़ी चले तो शुभ है। सूर्य गरम होता है तथा भोजन ठीक पचता है। जिस समय सूर्य नाड़ी चलती हो बुद्धिमान को शयन करना चाहिये। बाएं करवट लेट जाइए सूर्य्य नाड़ी चलने लगेगी।

(स्वा० कृष्णानन्द)

प्रेमा भक्ति के साधन

[ले० भक्त रत्न मथुराप्रसाद जी]

गतांक से आगे।

प्रिय पाठक गण! प्रेम के स्वरूप के वर्णन में महात्मा नागरीदास जी की वाणी (इश्क चमन) में दो प्रश्न उपस्थित हुए थे उनमें एक का समाधान गत अंक में हो चुका। दूसरा प्रश्न यह था कि लोक निंदा को महात्मा नागरीदास जी ने शादियाना क्यों बतलाया। इस का समाधान यह है कि संसारी मनुष्य को यद्यपि लोक में सुयश कमाना ही शोभित होता है लोक निन्दा उसके लिये मरण तुल्य खेद जनक है तथापि जो मनुष्य भगवत् प्रेम में अति उच्च कोटि को प्राप्त हो चुका हो उसे मान अपमान समान है। प्रत्युत प्रतिष्ठा और गौरव उन्हें बाधक प्रतीत होते हैं।

प्रतिष्ठा शूकरी विष्टा गौरवं रौरवं स्मरेत्

इसमें प्रेम संहिता का एक दृष्टान्त सुनियेः–

एक महात्मा किसी नगर में भिक्षार्थ जा निकले राजा वहां का राजा अश्वशाला में घोड़ों को देख रहा था महात्मा उसी स्थल में जा पहुंचे और भिक्षा मांगी राजा की प्रकृति हंसी दिल्लगी करने की थी उसने लीद के ढेर में से लीद उठा कर महात्मा की झोली में डालदी। महात्मा ने आशीर्वाद दिया कि अच्छा बच्चे दिन दुनी पलक सवाई हो और अपने आश्रम में पहुंच कर वो लीद एक कोने में डालदी जो दिन दुनी पलक सवाई बढ़ने लगी। दैवगति से किसी समय वोही राजा जंगल में शिकार खेलने गया था अपने साथियों से बिछुड़ कर प्यास का मारा जल की खोज में भटकता २

उन्हीं महात्मा के आश्रम पर जा निकला जिनको भिक्षा में लीद दी थी। महात्मा ने राजा को आसन दिया और ठंडा जल पिलाया कुछ फल भी भगवत् प्रसादी राजा को खाने के लिये दिये।

राजा सन्तुष्ट हो कर आश्रम को देखने लगा इसकी दृष्टि एक बड़े लीद के ढेर पर पड़ी जिससे विस्मित होकर सन्तों से प्रश्न कर बैठा कि महाराज सन्त जी आपके स्थान में कोई घोड़ा नहीं न आपको सवारी से प्रयोजन फिर यह लीद का ढेर कैसा। (न महात्मा ने राजा को पहचाना था कि लीद का दाता यह वही राजा है न राजा को ख्याल आया कि यह महात्मा वोही है) महात्मा ने पहले तो निषेध कर दिया कि इस भेद के जानने से तुम्हें क्या प्रयोजन है पीछे राजा के अत्यंत गिड़गिड़ाने और हठ पूर्वक प्रार्थना करने पर बोले कि राजन् एक दिन नगर में भिक्षा को गया था वहां के राजा ने हम को भिक्षा में लीद दे दी। हमारे मुख से निकल गया कि दिन दुनी पलक सवाई बढ़े, उसी समय से वह लीद बढ़ रही है। राजा ने ज्यों ही सन्त के मुख से यह बात सुनी तुरन्त उसे याद आगई, कि वो लीद का दाता मैं ही हूं। तब राजा ने हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक कहा कि महाराज! यह और बता दीजिये कि इस लीद का बढ़ कर होगा क्या। तब सन्त ने कहा राजन् यह लीद उसी दाता राजा को शूकर कूकर योनि धारण करके भक्षण करनी पड़ेगी।

अब तो राजा के होश उड़ गये। और अचेत हो पृथ्वी पर गिर गये। साधु ने बहुत देर तक शीतल जल आदि से छिड़क कर चेत कराया। राजा ने महात्मा के चरण पकड़ लिये और आंसू बहाते हुए निवेदन किया- कि महानुभाव मैं ही वह अपराधी हूं अब कृपा करके उपाय भी आप ही बतलाइये। सन्त ने विचार कर उत्तर दिया कि यदि कोई काम ऐसा तू करे कि जिससे तेरी निन्दा हो और वास्तव में तू निष्पाप रह कर औरों की नजर में पापकी दिखाई देवे तो निन्दक लोगों के यह बंट जाय उन्हें खानी पड़े राजाने कहा आप ही कोई ऐसा कर्म बताइये जिसका उक्त परिणाम हो। तब सन्त ने विचार करके कहा। राजन्! एक ब्राह्मण की कुमारी कन्या तलाश करो जो पन्द्रह सोलह वर्ष की और सुन्दरी हो, उसे तुम अपने पास रख कर दिल से तो उसमें अपनी पुत्री का भाव रखना जाहर में ऐसा बर्ताव करना जिससे निन्दा हो, राजा की समझ में यह बात आगई और उसने अपने घर आकर पुरोहित की स्यानी कुमारी कन्या को बुला कर अपने पास रख लिया। दिल से तो उसे पुत्री मानता था, परन्तु लोगों को दिखाने के लिये उसको नानाभांति के बढ़िया वस्त्र भूषण पहना कर अपने साथ गाड़ी में हवा खोरी को ले जाने लगा। अब तो रनवास में चर्चा हुई और फैलते फैलते सारे नगर क्या उसके समग्र राज्य में फैल गई कि राजा की बुद्धि भ्रष्ट होगई है बड़ा अधर्मी है ब्राह्मण की कुमारी कन्या से कुकर्म करता है। इत्यादि, ज्यों ज्यों झूठी निन्दा का विस्तार होता गया वो लीद का ढेर कम होता गया कुछ दिनों बाद राजाने खुद जाकर देखा तो लीद का नाम निशान भी नहीं रहा। महात्मा जी को राजा ने धन्यवाद दिया, तब महात्मा ने कहा कि अब उस कन्या का विवाह किसी योग्य द्विज के साथ कर दो। राजाने ऐसा ही किया। निदान जो लोग दूसरे की निन्दा करते हैं वे उसका मल अपनी जिह्वा से धोते हैं। इसी अभिप्राय से निन्दा को शादियाना कहना अनुचित नहीं है।

अब जो लोग वाचक ज्ञानियों के बहकाये

हुए विवेक वैराग्य आदि साधनों के बिना ही स्वयं ब्रह्म बने हुए प्रेम और भक्ति को तुच्छ और अनावश्यक समझते हैं। और विचार सागर आदि भाषा ग्रन्थों के द्वारा कर्म और उपासना को एक बहुत नीचे दरजे की चीज़ मान रहे हैं उन महाशयों से हमारा नम्र निवेदन यह है कि–

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम्।'

इस प्रमाण वचन के अनुसार जो आप अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बन रहे हो और भगवद्भक्तों की हंसी उड़ाते हो यह आपकी बड़ी भारी भूल है प्रथम ध्यान दीजिये कि अद्वैत मत के अनुसार ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी कौन होता है। विवेक वैराग्य शम आदिषट सम्पति और मुमुक्षता में इन साधनों वाला अधिकारी होता है। इन साधनों में से एक भी न हो तो ज्ञान का अधिकारी ही नहीं हो सकता आप में कौन कौन साधन मौजूद हैं। क्या ब्रह्मलोक तक के भोगों से आपको घृणा हो चुकी है। क्या आप मान अपमान-सिद्धि असिद्धि सुख दुःख आदि द्वन्द पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। क्या आपको संसार में किसी पर भी मोह नहीं है। क्या देह में आत्म बुद्धि आप को किसी समय भी नहीं होती। यदि आप सत्य वादी हैं तो जरूर अंगीकार करेंगे कि ऊपर कहे हुए साधनों में से एक भी आप में नहीं है। तो ऐसी स्थिति में आप का ब्रह्म बन बैठना क्यों कर उचित समझा जाय। केवल जिह्वा से उच्चारण करने मात्र से आप ज्ञानी कदापि नहीं कहे जा सकते। (दूसरे) विचार सागर ग्रन्थ में मंगलाचरण के दोहों के अर्थ पर दृष्टि दीजिये। उसमें गंभीर विचार की आवश्यकता है।

दो०–अधि अपार स्वरूप मम लहरी विष्णु महेश।
विधि रवि चन्द्रा वरुण यम शक्ति धनेश गणेश॥

इसके साधारण अर्थ से लोग चक्कर खा जाते हैं। जाहिरी अर्थ इसका तो यह दीख पड़ता है कि महात्मा निश्चलदास जी (विचार सागर ग्रन्थ के कर्ता) लिख रहे हैं कि मेरा स्वरूप एक अपार समुद्र है जिसमें साक्षात् विष्णु भगवान् तथा भगवान् शंकर महेश्वर और ब्रह्मा सूर्य चन्द्र वरुण कुबेर आदि देवता मेरी लहरी (तरंग) रूप हैं।

आपने इसका यह अर्थ समझ लिया होगा कि हमारा आत्म स्वरूप एक अथाह समुद्र है और ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देव गण हमारी लहरी रूप हैं। समुद्र के मुकाबिले पर लहर बहुत तुच्छ चीज है समुद्र हम और उसकी लहर सारे पूज्य देवता ठहर गये तो अब किस की उपासना की जाय और जरूरत क्या कि सब से बड़े होकर किसी के दास लगें।

परन्तु भाई जी* उक्त दोहे में जो स्वरूप मम यह शब्द आया है इसको अपना या उस ग्रन्थकर्ता का हाडमास चाम का शरीर नसमझो, वह समग्र चर अचर सृष्टि में आकाशवत् व्यापक चैतन्य समझो स्वयं अद्वैत मत के आचार्य श्रीशंकराचार्य महाराज क्या आज्ञा कर गये हैं उस पर भी जरा दृष्टि डालो।

'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीन त्वम्।
सामुद्रोहितरङ्गः क्वच न समुद्रो न तारङ्गः॥

अर्थात् हे नाथ! तत्व दृष्टि से देखाजाय तो मुझ में और आप में कुछ भेद नहीं एक ही हैं परन्तु इतना जरूर है कि आप समुद्र हैं और मैं तरंग (लहर) हूं समुद्र की तरंग कहलाती है तरंग का समुद्र कहीं नहीं कहा जाता। अब ध्यान देने का स्थान है कि अभेद वादी अद्वैत मत के परम आचार्य जगत् गुरु श्रीशंकर स्वामी तो अपने को तरंग और एक भाषा ग्रन्थकार उसी संप्रदाय के शिष्य श्रीसन्त

निश्चलदास जी अपने को समुद्र और विष्णु आदि सब देवताओं को तरंग कह रहे हैं। इन दोनों में अधिक प्रामाण्य किसको है। और श्रीशंकर स्वामी जी तरंग भी अपने शरीर को नहीं बतलाते शरीरों के साक्षी चैतन्य आत्मा को आज्ञा कर रहे हैं। और विष्णु भगवान् से अति प्रेम और नम्र भाव से विनय की है।

इस कारण अद्वैत मत के अनुसार भी भगवद्भक्ति मुख्य कर्तव्य सिद्ध होती है।

(३) श्रीमद् भगवद्गीता में अनेक श्रीकृष्ण वाक्यों से भक्ति का प्राधान्य सिद्ध होता है।

भक्त्यामामभिजानति यावान्यश्चास्मितत्वतः,
ममेभक्तः प्रणश्यति, श्रद्धावान् भजते यो मां समेयुक्त तमोमतः
ब्रह्म भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम्॥

इस प्रमाण वचन से तो ज्ञान प्राप्ति के अनंतर परा भक्ति की मुख्यता सिद्ध होती है गीता के छटे अध्याय में तपस्विभ्योऽधिकोयोगी, इत्यादि योग की महिमा दिखा कर भगवान् ने स्पष्ट आज्ञा करदी है कि-

"योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

अर्थात् सब योगियों में भी वाही श्रेष्ठ है जो श्रद्धा पूर्वक मेरा भजन करता है।

(४) विचारणीय यह है कि किसी पदार्थ का यथावत् जान लेना बड़ी बात है या उसका प्राप्त हो जाना। ज्ञान नाम जानने का है और उप आसन का अर्थ है समीप स्थिति, यदि हमको यह ज्ञान भली भांति हो कि हमारे सम्राट महोदय की ऐसी सूरत डौल डौल रहन सहन है ऐसी प्रकृति है और अमुक अमुक उत्तमोत्तम सद्गुण उन में विद्यमान हैं परन्तु दूर देश निवास होने के कारण हमको उनके दर्शन न मिले। तो कहिये ज्ञान मात्र किस हमारे काम की वस्तु ठहरे। इसी प्रकार परम पिता भगवान् का परिपूर्ण ज्ञान होने की अपेक्षा उनकी उपासना अर्थात् उनके समीप रहने का सौभाग्य प्राप्त होना कितनी ऊंचे दर्जे की सम्पत्ति है।

(५) कदाचित् यह कहो कि आधुनिक परिपाटी के अनुसार हम तो स्वयं ब्रह्म सिद्ध हो चुके तो समीपता की अपेक्षा यह ब्रह्म पद्वी उत्कृष्ट है। इसके उत्तर में यह बात याद कर लेने की है कि शरीर तो आपका वोही पंचभौतिक है जैसा समस्त जीव धारियों का क्षण भंगुर अनित्य है और ब्रह्म सदा सर्वदा एक रस रहने वाला नित्य और सनातन है तो शरीर से तो आप ब्रह्म हो नहीं सकते। और जीव आत्मा के लिये गीता में श्रीकृष्ण जी ने फर्मा ही दिया है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

अर्थात् अंश रूप जीव है। और सातवें अध्याय में प्रकृति दो प्रकार की अपरा, और परा बता कर भगवान् ने जीवको अपनी अपरा प्रकृति बतलाया है। इन भगवद्वाक्यों के अनुसार भी आप ब्रह्म नहीं किन्तु ईश्वर का अंश या उनकी प्रकृति कहे जा सकते हैं। और तेरवीं अध्याय में कहे हुवे "अमानित्वं अदम्भित्व" आदि ज्ञान के लक्षणों का आप में अभाव होने से आप ज्ञानी भी नहीं कहे जा सकते हाँ आपको वाचक ज्ञानी जरूर कह सकेंगे और वाचक ज्ञानी (इतो भ्रष्टस्त तो भ्रष्टः) आप भी पतित होते और औरों को भी बहकाकर पतित बना देते हैं। इस विषय में कुछ दृष्टान्त हैं सो आगे निवेदन किये जांयगे।

अपूर्ण

आह्वान

ले० श्रीमती ब्रज कुमारी 'विदुषी'

वृन्दावन की कुंज गलिन में,
फिर क्या कभी नहीं आओगे मोहन ॥ १ ॥
वंशी की वह मधुर तान को,
फिर क्या कभी न सुनाओगे मोहन ॥ २ ॥
कालिन्दी कल कूल कदम्ब पै,
फिर क्या न रास रचाओगे मोहन ॥ ३ ॥
गोप सखा संग गैयन को वन,
फिर क्या कभी न चराओगे मोहन ॥ ४ ॥
वृन्दावन की गोपी जन से न छीन,
छीन ऋषि लाओगे मोहन ॥ ५ ॥
थिरक २ कर मधुर नृत्य वह,
राधे संग न कराओगे मोहन ॥ ६ ॥
मोर मुकुट मुरली मुख साजे,
चंद्र वदन न दिखाओगे मोहन ॥ ७ ॥
पीड़ित इस ब्रज भूमी भारत में,
फिर क्या कभी नहीं आओगे मोहन ॥ ८ ॥

प्रेम प्याला

[ले० "प्रेम पथ-पथिक"]

प्रेम प्याला जो पिये, शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का लेय ॥

ओ प्रेम मतवाले यार! जरा ठहर भी तो जाओ। मैं भी तो उसी भट्टी का साझेदार हूं जहाँ से तुम ने यह मस्ती खरीदी है। क्या कहा "नहीं" ओफ! इतनी हिम्मत! इतनी ढिठाई!! याद रक्खो, यदि तुम आज मेरे इस प्याले को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हो तो एक समय आवेगा और शीघ्र आवेगा जब तुम इसकी एक बून्द के लिये सिर पटकोगे, हाथ जोड़ोगे और आठ २ आँसू रोओगे। अजी! जिस समय तुम्हें यह पता लग जायेगा कि वह भट्टी अब मेरे ही ठेके में आने वाली है उस समय मैं भी तुम्हारे ही जैसा.....। हां समझे।

न समझे मेरी बला से। तुम जाते कहां हो? एक न एक दिन तो फंसना ही पड़ेगा। फिर देखना मैं कैसा काठ का उल्लू बनाता हूं। अच्छा नहीं बोलोगे। न बोलोगे न सही। यह तो तुम्हारे ही लाभ की बात है। मेरा क्या! प्याला है तो तुम्हारे जैसे पियक्कड़ गलियों में मारे २ फिरते हैं और एक बून्द के लिये तीन घण्टे तक भट्ठी पर नाक रगड़ते रहते हैं। फिर वही बात! इतनी शान, इतना अहंकार। अरे जब रावण और कंस का अहंकार नहीं रहा तो तुम किस खेत की मूली हो!

इसलिये फिर भी कहता हूं कि जरा ठहर जाओ और इस नये, मस्त कर देने वाले का भी जरा आनन्द ले लो। सच कहता हूं, ऐसी मस्ती तुम्हें आज तक नहीं मिली होगी और न मिलेगी। पूछते हो कि मैं इतना हठ क्यों करता हूं। मुझे ही इतनी गरज क्यों पड़ी है? हां जी! उलटे चोर कोतवाल को डाटें मैं तुम्हारी खुशामद करूं। इतने प्रेम से बुलाऊं और तुम मेरी चिर आशा पर पानी फेर दो? क्या प्रेम का यही पुरुष्कार है। लोग कहते हैं कि प्रेम का नतीजा बुरा होता है। पतंग दीपक से प्रेम करता है और जल मरता है! मृग नाद से प्रेम करता है और मारा जाता है। बात ठीक है। बावन तोले पावरत्ती ठीक है पर क्या तुमने सोचा कि ये प्रेम सदोष है या निर्दोष, अच्छी वस्तु से है वा बुरी। ले भला जी! रूप और शब्द पर मोहित हो प्राण दे देना क्या सच्चा प्रेम हो सकता है। यदि यही बात

है तो विषयों की प्राप्ति के लिये भी विह्वल हो जाना प्रेम ही कहलायेगा। लेकिन नहीं, ऐसी बात नहीं। प्रेम को अप्रेम में न बदलो। अर्थ को अनर्थ न कर डालो। प्रेम एक अलौकिक गुण है। इसका निबाहना और तलवार की धार पर चलना बराबर है। कबीर जी कहते हैं:-

प्रेम निबाहना कठिन है, जैसे पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर॥

प्यारे मस्तमौले! अब भी तो जरा अपने चरण कमलों को यहाँ लाने का कष्ट दो और बस प्रेम प्याला का एक बून्द भी तो चख देखो। क्या तुम्हें तरस नहीं आती? देखो कब से प्याला लिये खड़ा हूं। हाथ कांपने लगे और पैर फिरने लगे पर अब भी तुम मेरे प्रेम को समझ न सके। अच्छा बताओ तो सही मैं किन शब्दों से तुम्हें पुकारूं। नहीं जरा बोलो भी तो। याद रखना फिर ऐसा पवित्र प्रेम ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। हाँ सुना, कहते हो कि खरीद लूंगा तो क्या तुम ने नहीं सुना है कि बाबा कबीरदास जी कहते हैं:-

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचै, शीश दे लेई जाये॥

कैसी बेतुकी बातें हैं। भला शीश ही दे दे तो प्रेम ले कौन? खरीदार ही चल बसा तो सौदा खरीदे कौन? नहीं, नहीं ऐसी बात भी नहीं। क्या कबीर दास ऐसे वैसे थे कि उटपटांग लिख मारते। अपनी बातें तो वही जाने। पर भैया! मैं तो कबीर जी को पहुंचा हुआ मानता हूं और उनके अर्थों में खरी खोटी बातें पाता हूं। अजी मरने को नहीं कहते हैं बल्कि अपना सर्वस्व निछावर कर देने को कहते हैं। अपने आपको भी भूल जाने की कहते हैं और कहते हैं अपने अस्तित्व को मिटा देने। की समझा आपने।

क्या तुमने समझ रक्खा है कि इसमें मेरी कोई खुदगर्जी है? नहीं, कभी नहीं बिलकुल नहीं। मैं तो केवल इस लिये हठ कर रहा हूं कि जरा तुम इस मय का भी मजा जान लो फिर उस भट्ठी पर जाना भूल जाओगे। इसकी मस्ती ठहरने वाली और उसकी क्षणभंगुर है। यह प्याला सच्चे प्रेम से लबालब भरा है और वह धोखे की टट्टी है। वह पतंग का प्रेम है और यह प्रह्लाद का। वह अकबर की मीठी छुरी है और यह महात्मा ईसा का अचल प्रेम है।

ऐ प्रेम पथ के पथिक! जरा मेरी भी तो सुन लो। जितनी खुशामद मैं तुम्हारी कर रहा हूं, यदि उतनी और उतनी देर तक परम पिता परमात्मा की करता तो मेरा बेड़ा बहुत दूर तक निकल गया होता। पर क्या करूं, स्वभाव से विवश हूं। दूसरों का कूवे में गिरना देखा नहीं जाता। सब से बड़ी बात तो यह है कि तुम ठहरे मेरे लंगोटिया मित्र और अनन्य प्रेमी तो ऐसी हालत में मैं तुम्हें छोड़ ही कैसे सकता हूं। जब श्री आनन्दकन्द ब्रजचन्द श्रीकृष्ण अपने सहपाठी सुदामा को नहीं भूले तो भला मैं तुम्हें कब भूलने वाला!

बस अरमान पूरा होगया। अन्त में मान ही तो गये। क्या हुआ यदि दिनभर का भूला हुआ शाम को घर लौट आया। देखा, प्रेम प्याला कैसा है?

——

महात्माओं के वाक्य।

१. अपने पास सोना और चान्दी कुछ भी न रख जो कुछ तेरे पास है उसको बेच कर दान करदे।

* * * *

२. यदि तू परमात्मा को सर्वत्र नहीं देख सकता है तो किसी विशेष स्थान में उसे कभी नहीं पा सकेगा।

* * * *

३. परमात्मा की सच्ची पूजा परमात्मा के तुल्य होजाना है।

* * * *

४. विश्वास पर्वतों पर शासन कर सकता है परन्तु वह इच्छा नहीं करता।

* * * *

५. विश्वास हमारी वह इच्छा है जिससे हम परमात्मा को अपना पति बना लेते हैं।

* * * *

६. श्रद्धा सब से बड़ी मूर्खता है परन्तु यह ऐसी मूर्खता है जो हमको परमात्मा से मिला देती है।

* * * *

७. महान् पुरुष की शिक्षा को उसके निकट रहने वाले ग्रहण नहीं किया करते। उनकी दृष्टि से उनकी शिक्षा इस प्रकार ओझल रहती है जिस प्रकार छोटी पहाड़ियों से पर्वत।

* * * *

८. समस्त मतों का सार यह है कि परमात्मा से मिलना चाहता है तो संसार को भूल जा।

* * * *

९. अपने आपको जान ले फिर तू समस्त विश्व को और देवताओं को जान जावेगा।

* * * *

१०. आत्मा में सब कुछ व्याप्त है जो जो अपनी आत्मा को जानता है वह सब कुछ जानता है और जो अपनी आत्मा से अनभिज्ञ है वह सब से अनभिज्ञ है। (सुकरात)

* * * *

११. परमात्मा का ज्ञान पुरुष के समान है और परमात्मा का प्रेम स्त्री के समान। ज्ञान द्वारा परमात्मा के वाह्य कलेवर में प्रवेश किया जा सकता है परन्तु उसके अन्तर्भेद में प्रविष्ट होने के लिये प्रेम की आवश्यकता है। (रामकृष्ण परम हंस)

* * * *

१२. बुरा विचार सब से भयानक चोर है। संसारी विचार और चिन्ताएं चित्त से निकाल दो। बुरे विचार मत रक्खो।

* * * *

१३. मन एक साफ और चमकदार शीशा है; हमारा कर्तव्य यह है कि इसे सदैव पवित्र रक्खें और इस पर कभी भी धूल न जमने दें।

* * * *

१४. जिस प्रकार सूर्य की तीक्ष्ण किरणें घोर अन्धेरे में प्रवेश करके उसे दूर कर देती हैं इसी प्रकार ध्यान द्वारा एकाग्र किए विचार अत्यन्त गहन रहस्य को प्राप्त कर लेते हैं।

* * * *

१५. अविनाशी परमात्मा के दर्शन चित्त के शान्त होने पर होते हैं। जब चित्त का समुद्र इच्छाओं से चंचल होता है तो उसमें परमात्मा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता।

* * * *

१६. साधु महात्माओं का सत्संग आध्यात्मिक उन्नति का सब से बड़ा साधन है।

१७. जो ज्ञानी पुरुषों का संग करेगा वह ज्ञानी हो जावेगा।

१८. जो गुरु की आज्ञा हो वही करो, इससे उत्तम कुछ भी नहीं है। कोई गुरु की निन्दा करे या उन पर दोषारोपण करे तो उसे मत सुनो और उस स्थान को तुरन्त छोड़ दो।

१९. जो गुरु को मनुष्य मानते हैं वह उनके सम्बन्ध से कुछ लाभ नहीं उठा सकते।

२०. ज्ञान के प्राप्त करने का एक साधन है अपना अनुभव, परन्तु यह सब से कठिन है, दूसरा साधन है गुरु की दया, यह सब से आसान है, तीसरा साधन है समस्त बाह्य वस्तुओं का त्याग करके ध्यान परायण हो जाना यह सबसे उत्तम है (कनफ्यूशश)

२१. पुरुषार्थ करने के लिए कमर कसलो क्यों कि मार्ग तुमको स्वयं चलना होगा गुरु तो केवल मार्ग दिखाने वाला है।

२२. बुद्धिमान को चाहिए कि किसी के दबाव में न रह कर स्वतंत्रता पूर्वक काम करे।

२३. यह उत्तम बात है कि हम नेक हों और लोग हमको बुरा कहें परन्तु यह बुरी बात है कि हम बुरे हों और लोगों से नेक कहलाने का प्रयत्न करें। (शेख सादी)

२४. केवल वही मनुष्य साधु कहलाने योग्य है जिसने सांसारिक भलाई बुराई को जीत लिया है और सदैव ज्ञान के प्रकाश में रहता है (धम्मपद)

२५. मैं उनसे प्रेम करता हूं जो मुझको बहुत घृणा की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उनकी इच्छा से छूटे हुए तीर दूसरे किनारे पर जाकर पड़ते हैं।

२६. ओस की बून्दें कमल के बड़े पत्ते पर पड़ती हैं और थोड़ी देरी उसपर रह कर इधर, उधर ढलक कर समाप्त हो जाती हैं। यही दशा मनुष्य जीवन की है। (सोजो हेन जी)

२७. जिस मकान की छत मज़बूत होती है उसमें वर्षा का जल प्रवेश नहीं कर पाता इसी प्रकार ध्यान परायण चित्त में विषय वासनाओं का प्रवेश नहीं हो सकता (धम्मपद)

२८. उस साधक को पूर्ण समाधि में स्थित समझना चाहिये जो ध्यान की अवस्था में बाह्य वस्तुओं से इतना प्रथक् हो जावे कि पक्षी उसकी जटाओं में घोंसला बनाले और उसको पता न लगे। (राम कृष्ण)

२९. इस आत्मा की प्राप्ति सत्य, तप, पवित्रता और ज्ञान द्वारा हो सकती है। (उपनिषद्)

३०. साधक को चाहिये कि अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार की बात चीत न करे, अहंकार और दर्प को चित्त से निकाल दे और सन्तोष, सहन शीलता और मौन के शस्त्रों से अपने को सुसज्जित करे ताकि व्यर्थ की वार्तालाप में उसका अमूल्य समय नष्ट न हो। (बहाउल्ला)

अध्यात्मिक साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी]

१. चित्त मानसिक पदार्थ है। चित्त के काम हैं स्मृति, धारणा और अनुसन्धान। जब तुम जाप करने में मन्त्र का उच्चारण करते हो तो चित्त ही मन्त्र को याद रखता है। चित्त बहुत काम करता है। यह मन और बुद्धि दोनों से उत्तम काम करता है।

२. मन्त्र का केवल साधारण जप भी बड़ा प्रभावशाली होता है। यह चित्त को शुद्ध करता है। यह द्वारपाल काम करता है। जब कोई संसारी विचार तुम्हारे अन्दर दाखिल होने को होता है तो यह तुमको सूचना देता है। उस समय तुमको शीघ्र सावधान होकर मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। मन्त्र के साधारण जाप में भी मन का कुछ भाग उसमें लगा रहता है।

३. विक्षेप शक्ति माया का ही कार्य है। संसार का प्रादुर्भाव इसी शक्ति द्वारा हुआ है। संकल्प विकल्प, नाम व रूप इसी शक्ति द्वारा दृष्टिगोचर होते हैं। उस मनुष्य में विक्षेप नहीं रह सकता जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है।

४. विक्षेप उपासना द्वारा निवृत्त होता है। त्राटक, प्राणायाम जप, प्रणव का उच्चारण, और अहं ब्रह्मास्मि भावना से विक्षेप का नाश होजाता है

५. "तत् त्वं असि" तुम ब्रह्म हो। इस भावना में स्थिरता प्राप्त करो चाहे तुम किसी दफ्तर में साधारण क्लर्क ही क्यों न हो। सदैव प्रसन्न रहो, अभय रहो। तुम शरीर और मन से प्रथक् हो। अपने आत्मा को पांच कोषों से इसी प्रकार प्रथक् करो जिस प्रकार सरकण्डे से मूँज प्रथक् की जाती है।

६. आत्मा अजर है, अचल है, अमर और अविनाशी है।

७. 'तत् त्वं असि, तू वह है। तुम सर्वव्यापक आत्मा हो। तुम अमर हो। अपने आपको ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष करो। मन तुमको लालच व धोखा देता है। इस आत्मा के शत्रु को नष्ट करो।

८. ब्रह्मचर्य के आठ अङ्ग हैं। ब्रह्मचारी को बहुत प्रयत्न करके अपने आपको पवित्र रखना चाहिए। अष्ट साधना यह हैं। १ दर्शन, २ स्पर्श, ३ केलि (क्रीडा करना) ४ कीर्तन (बात चीत करना) ५ गुह्य भाषण ६ संकल्प ७ अध्यवसाय (प्राप्त करना) ८ क्रिया निवृत्ति (भोग करना)

९. सन्तरे के ऊपर का छिलका स्थूल शरीर को प्रदर्शित करता है। भीतर की झिल्ली जिसमें रस की ग्रन्थियां है सूक्ष्म शरीर को जाहिर करती है। बीज कारण शरीर अथवा बीज शरीर को प्रकट करता है। नारंगी का रस (तत्व) आत्मा है। तुम जैसे छिलके झिल्ली और बीजको फेंक देते हो और केवल रस को ग्रहण करते हो, इसी प्रकार आत्मा को जोकि शरीर में छिपा हुआ है दृढ़ता से पकड़ो और तीनों शरीरों को फेंक दो।

१०. यदि तुम वृक्ष को जड़ को जल से सींच दोगे तो समस्त वृक्ष हरा भरा हो जावेगा और आनन्दित हो जावेगा। इसी प्रकार यदि तुम परमात्मा का भजन करके उसको सन्तुष्ट करलोगे तो

समस्त विश्व सन्तुष्ट होजावेगा, क्योंकि संसार परमात्मा का ही रूपान्तर मात्र है। यह परमात्मा से प्रथक नहीं है।

११. जिस प्रकार गुण और स्वभाव के लिहाज से साधक या जिज्ञासुओं में भेद होता है उसी प्रकार साधनों में भी भेद होता है। भक्तियोग भावुक प्रकृति के पुरुष के लिए ठीक है। बुद्धिमान, के लिए ज्ञानयोग उपयोगी है परन्तु फल दोनों का एक है। भक्त भी परा भक्ति द्वारा कैवल्य मोक्ष को प्राप्त करता है क्योंकि परा भक्ति ज्ञान का ही दूसरा नाम है।

१२. स्त्री पुत्र और धन का छोड़ देना तो सहल है परन्तु मान अपमान का त्याग बड़ा कठिन है। यह माया का सूक्ष्म रूप है। बहुत उन्नत योगी भी नाम और कीर्ति के गुलाम होते हैं। इसलिए साधक को बहुत सावधान रहना चाहिए।

१३. शर्दी और गरमी का सहन करना, मान अपमान के सहन करने से भी कठिन है और भूख का सहन करना शर्दी गरमी के सहन करने से भी कठिन है, और प्यास का सहन करना इससे भी दुष्कर है। ईर्षा को दूर करना मान अपमान के दूर करने से भी कठिन है। बहुत बड़े हुए योगी भी ईर्षा के वशीभूत होते हैं। उनका हृदय ईर्षाग्नि से जल उठता है जब वह किसी अन्य पुरुष को प्रतिष्ठा पाए हुए देखते हैं। प्रतिष्ठा और कीर्ति का त्यगना सब से कठिन काम है परन्तु जो बात एक के लिए कठिन है दूसरे के लिए वही आसान है।

१४. रुपया पदार्थों के बदलने के लिए चिन्होला है। तुम एक सेर दूध लेते हो और उसके बदले में चार आने देते हो। दूध वाला उस पैसे से एक सेर चावल खरीद लेता है। रुपया जड़माया है और स्त्री चैतन्य माया है।

१५. ज्ञानी भी व्यवहार करता है और अज्ञानी भी व्यवहार करता है। ज्ञानी जानता है कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है और अज्ञानी यह समझता कि संसार सत्य है। ज्ञानी अकर्ता भाव और साक्षी भाव से काम करता है और अज्ञानी कर्ताभाव से काम करता है। ज्ञानी वासना रहित काम करता है अज्ञानी वासना सहित काम करता है। ज्ञानी आसक्ति रहित है। ज्ञानी के लिए काम विलास मात्र है और अज्ञानी उसमें फंसा हुआ है क्योंकि उसको फल की लालसा है।

१६. शुभेच्छा प्रथम ज्ञान भूमिका है। सत्संग की और सत् शास्त्र विचार की इच्छा और इस संसार समुद्र को तर कर मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा जब जिज्ञासु के चित्त में उत्पन्न होती है तब उसे शुभेच्छा कहते हैं।

१७. जिस प्रकार बढ़ई कुर्सी, मेज़ और दरवाज़े आदि बनाता है उसी प्रकार परमात्मा संसार को रचता है। यह बढ़ई का संसार रचने का सिद्धांत है।

१८. संसार का आदि नहीं है, कोई नहीं कह सकता कि संसार की रचना कब हुई थी, और न कोई यह कह सकता है कि इसका अन्त कब होगा? इसलिए संसार का कोई कर्ता नहीं है। यह दूसरा सिद्धान्त है।

१९. ओ३म् का अर्थ व भाव सहित जप निर्गुण उपासना का एक साधन है। यह दूसरा साधन है।

२०. एक ढंग साक्षी भाव का है। तुम अपने आपको बाह्यपदार्थों से प्रथक् करो और अनन्य आन्तरिक वृत्तियों से भी प्रथक् करो। इस तरह तुम वृत्तियों के साक्षी बन जाओगे। इस प्रकार का साधन करते हुए तुम काम भी कर सकते हो। लगातार ओ३म् साक्षी ओ३म् साक्षी का जप करो।

२१. यह विचार करो कि सब शरीर तुम्हारे हैं

अपने शरीर में कुछ भी आसक्ति न रक्खो। मन में कहो "सब शरीर मेरे हैं।" अपनी आत्मा का विकाश करो। अपने आपको समष्टि विराट् से तुलना करो। वेदान्त अभ्यास में यह प्रथम साधन है। यह स्थूल विकाश है।

२२. अपने आपकी हिरण्यगर्भ (समष्टि प्राण) से तुलना करो। यह आत्म विकाश में सूक्ष्म साधन है।

२३. अपने आपकी ईश्वर से तुलना करो जो कि समस्त कारण शरीरों का केन्द्र है।

२४. अन्त में अपनी ब्रह्म से तुलना करो जो कि विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर सब से श्रेष्ठ है।

२५. स्थूल को सूक्ष्म में लय करो, सूक्ष्म को कारण में और कारण को आत्मा अथवा ब्रह्म में लय करो। यह लय चिन्तन है।

२६. जिस प्रकार तिलों में तेल है वैसे ही यह संसार (अविद्या माया) ब्रह्म में स्थित है।

२७. यह शरीर आधिभौतिक सृष्टि है, देवता जोकि इन्द्रियों का नियंत्रण करते हैं आधिदैविक सृष्टि है।

२८. वास्तव में तो सृष्टि है ही नहीं। यह तो केवल अध्यारोप है जैसे रज्जु में सांप। अधम श्रेणी के जिज्ञासु इस भाव को नहीं समझ सकते। इसलिए सृष्टि कार्य उपनिषदों में इन जिज्ञासुओं के समझाने के लिए अधिकारी भेद से दिया गया है।

२९ मन को अमन करना होगा। जो कुछ तुमने अब तक सीखा है उसे भूल जाना होगा उसी अवस्था में परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव है।

३०. समाचार पत्र नहीं पढने चाहिएं। समाचार पत्रों के पढने से संस्कार जाग्रत होते हैं और इससे समस्त संसार दृष्टि के सामने आ उपस्थित होता है। इनसे चित्त की एकाग्रता मे विघ्न पड़ता है।

३१. जीव को तीन प्रकार के ताप होते हैं अध्यात्मिक ताप, आधिभौतिक ताप और अधिदैविक ताप। ज्वर और शिर पीड़ा आदि अध्यात्मिक ताप हैं। बिच्छू या सांप का काट लेना या जंगली जानवरों से पीड़ा पहुंचना आधिभौतिक ताप है। बिजली का पड़ना, अधिक वर्षा व शरदी गरमी आदि दैविक ताप हैं। सांख्य के मतानुसार इन तीन तापों से निवृत्ति होनाही मोक्ष है।

३२. तुम्हारा भोजन नियम पूर्वक होना चाहिए। भोजन में एक समय में पाँच से अधिक चीज़े नहीं होनी चाहिएं। जिह्वा को वश करने का यह प्रथम साधन है जिह्वा को वश करना मन को वश करना है। जिह्वा को उपद्रव करने से रोकना चाहिए।

३३. इसी प्रकार तुमको वस्त्रों में भी नियमता रखनी चाहिए। चार कमीज़, चार धोती, दो तोलिए, दो ऊपर के कपड़े, और एक जूते के जोड़े, से अधिक नहीं रखने चाहिएं। आवश्कताओं के कम करने से मनुष्य को बहुत आनन्द व शान्ति मिलती है। जिस दिन तुम इस लेख को पढ़ो उसी दिन से इन नियमों पर चलने का प्रयत्न करो। दीर्घ सूत्रता बहुत हानि कारक है। जीवन बहुत छोटा है और काल बड़ी तेजी से चला जारहा है यह टाल मटोल करने वाला 'कल' फिर कभी नहीं आवेगा। बहुत मनुष्य 'कल' के धोखे में रहे हैं। जो करना है आज ही करो बल्कि अभी करो।

३४. राजसी और तामसी भाव आवरण है जो कि सत्त्व को छिपाए रखते हैं। प्राणायाम के करने से रजोगुण और तमोगुण की निवृत्ति होकर सत्त्व गुण की वृद्धि होती है।

३५. दिल दिमाग़ और हाथ तीनों ही का

विकाश होना चाहिए अर्थात् भक्ति, ज्ञान और कर्म्म तीनों साथ २ होने चाहिएं। इसीका नाम पूर्णता है। शुष्क वेदान्ती निकम्मे होते हैं।

३६. अध्यारोप मे गुरु, शिष्य, शास्त्र, नियम आस्तिकता सब कुछ है। सिद्धान्त मे केवल ब्रह्म स्वरूप है। अध्यारोप विकाश है और सिद्धान्त पूर्णता है। सापेक्ष और पूर्णता अध्यारोप और सिद्धान्त के दो और नाम हैं।

३७ विचार स्वातंत्र्य और सब मनुष्यों के लिए कर्म करने से और सबसे प्रेम करने से जीवन आनन्दमय बन सकता है। प्रेम मे सबसे अधिक संयम की शक्ति है। प्रेम से बढ़कर संसार में कोई भी शक्ति नहीं है। प्रेम ही परमात्मा का यथार्थ रूप है।

३८. परमात्मा के नामका जप करना योग का सबसे मुख्य अंग है।

३९. आवश्यकताओं के कम करने से शान्ति प्राप्त होगी आनन्द प्राप्त करने का यही रहस्य है।

४० मौन रहने से चित्त की एकाग्रता में बहुत सहायता मिलती है। वाक् इन्द्रिय द्वारा चित्त बहुत विक्षिप्त होता है। एकान्त वास करो। कम से कम कुछ घण्टे एकान्त में अवश्य रहो। अकेले बैठो, मिलना छोड़दो, जङ्गल या बाग़ में एकान्त स्थान में जाकर बैठो। आंखे बन्द करके परमात्मा के नाम का उच्चारण करो। हरिनारायण, श्रीराम, शिव २ ओ३म् ओ३म् जिसमे तुम्हारी लग्न हो। श्रद्धा भक्ति पूर्वक हृदय में जाप करो।

४१. ज्ञानी को सिद्धियाँ प्राप्त हो भी सकती हैं, और नहीं भी परन्तु यदि उसकी इच्छा है तो वह प्राप्त कर सकता है। ज्ञानी को अणिमा, महिमा सिद्धियां तो प्राप्त नहीं होसकतीं परन्तु उसको सत संकल्प द्वारा अध्यात्मिक सिद्धियां प्राप्त होसकती हैं। एक पूर्ण हठयोगी को अणिमा महिमा सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं। इस कलियुग में अणिमा सिद्धि का प्राप्त होना बड़ा दुष्कर है।

चोरी सिखादे तू।

[श्री गोकुल प्रसाद जी त्रिवेदी, साहित्य भूषण]

नाह भये जगत् के, करके विचित्र चोरी,
द्वापुर में नाम आप, चोर ही बताये हैं।
गोकुल में रास कर, गोपिन के चित्त चोरे,
माखन के चोर-चार, ग्वालन खिलाये हैं॥
कंस मद चोर महि को चुराये भार,
चोरी सों विवाह कीन्हों काहू न जनाये हैं।
"चरण-रज की चोरी" मुझे भी सिखादे तू,
नाम को प्रभाव, यहां चोरिन में गिनाये हैं॥

वासना

[डॉ० श्री महात्मा राम]

स्वभाविक उत्पन्न होने वाली हृदय की भावना को वासना कहते हैं।

जिस दृढ़ भावना से पूर्वापर के विचार शून्य पदार्थों का ग्रहण होता है अर्थात् हमारी भाषा सर्व देशों से श्रेष्ठ है, तथा हमारा कुल सर्व कुलों से ऊंचा है इत्यादि अभिनिवेश जिस जिस भावना से होवे वह भावना विद्वान् पुरुषों ने वासना कही है वह वासना दो प्रकार की है और उन दोनों का भिन्न २ फल है।

वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।
मलिना जन्मनो हेतु, शुद्धा जन्म विनाशिनी ॥

उपरोक्त वासना शुद्ध और मलीन इस भेद से दो प्रकार की होती है।

मलिन वासना तो इस पुरुष के जन्म का हेतु होता है अर्थात् मलिन वासना के कारण ही जीव को पुनः २ जन्म और मरण होता है और शुद्ध वासना जन्म के नाश का हेतु है।

मलिन वासना का स्वरूप और लक्षण इस प्रकार है:-

अज्ञान सघनाकार घनाहंकार शालिनी।
पुनर्जन्म करी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः ॥

ब्रह्म के स्वरूप का आवरक जो अज्ञान है उस अज्ञान से घनीभूत हुआ है आकार जिसका ऐसा जो घन अहंकार है उस अहंकार सहित जो वासना है उस वासना को विद्वानों ने मलिन वासना कही है।

वह मलिन वासना ही इस पुरुष को पुनः जन्म की प्राप्ति करने वाली है।

इस मलिन वासना को ही श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता के षोडश अध्याय में आसुरी संपत् के निरूपण प्रसंग में कहा है।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान् सुखी ॥
आढ्योभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशोमया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान विमोहिताः ॥

अहंकार से विमोहित बुद्धि में नाना प्रकार की मलिन वासना होती हैं उस वासना जाल के चक्कर में ही फंसा हुआ कहता है कि आज मैंने यह पदार्थ प्राप्त कर लिया है और इस पदार्थ के लिये मेरा मनोरथ है इतना धन मेरे पास मौजूद है इतना मुझे और मिलेगा, इस आदमी को मैंने नष्ट कर दिया है अन्य इन २ को भी मारूंगा, मैं इन सब को वश में करने वाला स्वामी हूं, इस समस्त सामिग्रीका मैंही भोक्ता हूं, मेरे सभी कामनायें सिद्ध होती हैं। मैं सब से बलवान हूं। मुझे सब प्रकार का सुख है, मैं बहुत धन सम्पत्ति वाला हूं तथा मेरा कुल बहुत श्रेष्ठ है, मेरे समान कोई नहीं है मैं बड़े यज्ञ करूंगा और बहुत दान दूंगा। इत्यादि अज्ञान से मोहित प्राणी भ्रान्त चित्त मोह जाल में फंसे हुये और विषय भोगों में आसक्ति वाले मनुष्य मलिन वासना के कारण, अपवित्र नरक में अर्थात् नीच गति में जाते हैं।

यह मलिन वासना यद्यपि अनन्त है तथापि स्मृतियों में यह मलिन वासना तीन प्रकार की कही है इन तीनों के अन्तरभूत सभी वासना आजाती हैं।

लोक वासनया जंतोर्देह वासनयापि च।
शास्त्र वासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥

उपरोक्त मलिन वासना लोकवासना, शास्त्र वासना, देह वासना इस भेद से तीन प्रकार की है। इन तीनों वासनाओं में कोई भी वासना पुरुष के अन्दर होवे तब तक उस वासना रूप प्रतिबन्ध के कारण यथावत् आत्मा का ज्ञान नहीं होता।

लोकवासना

जिस आचरण के धारण करने से सर्व लोक हमारी स्तुति करें कोई भी हमारी निन्दा न करें ऐसे आचरण को मैं धारण करूं इस प्रकार के अभिनिवेश को लोक वासना कहते हैं।

इस प्रकार की लोकवासना सौ करोड़ जन्मों में भी संपादन करने को अशक्य है। क्योंकि सर्व भूषणों से रहित तथा सर्व भूषणों से संपन्न

तथा नमस्कार स्मरणादिकों से सर्व पुरुषार्थों की प्राप्ति करने वाले जो राम कृष्णादिक ईश्वर हैं उनकी भी सर्व लोगों ने स्तुति नहीं की तब हम सरीके जीवों की तो सर्व लोक किस प्रकार स्तुति करेंगे किन्तु नहीं करेंगे। अतः लोक वासना संपादन करने को अशक्य है इसलिये लोक वासना को त्याग कर जिसमें अपना हित होवे वह आचरण करना चाहिये।

विद्यते न खलु कश्चिदुपाय सर्वलोक परितोष कोयः।
सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति बनोबहु जल्पः॥

जिस उपाय द्वारा सर्व लोग स्तुति करें ऐसा कोई उपाय लोक में तथा शास्त्र में नहीं देखा जाता इसलिये इस अधिकारी पुरुष को लोक वासना का त्याग करके सर्वथा अपने हित को ही संपादन करना चाहिये।

लोकों की निन्दा स्तुति की तरफ ध्यान नहीं देवे क्योंकि निन्दा स्तुति से सन्मार्ग गामी पुरुष को कोई हानि लाभ नहीं हो सका।

न लोक चिन्ता प्रहर्ग रतस्य, न भोजनाच्छादन तत्परस्य।
न शब्द शास्त्राभि रतस्य मोक्षो, न चातिरम्यावसथा प्रियस्य॥

जो पुरुष लोकों के चित्त को ही खेल तमाशों रंजन (प्रसन्न) करने में प्रीति वाला है तथा जो अपने भोजन वस्त्रादिकों में ही तत्पर रहता है तथा जो व्याकरणादिक अनात्म शास्त्र में प्रीति वाला है और जो अत्यन्त रमणीक ग्रह आदिकों में अभिनिवेश वाला है उसको मोक्ष कदाचित् भी नहीं होती।

शास्त्र वासना

शास्त्र वासना तीन प्रकार की होती हैं पाठ वासना, अर्थ वासना, अनुष्ठान वासना। समग्र आयु पर्यन्त वेद शास्त्रों का पाठ ही करते रहना और उसके अभिप्राय को न समझना इसको पाठ वासना कहते हैं।

यह पाठ वासना भरद्वाज को हुई है। भरद्वाज ऋषि आयु के तीन भाग ७५ वर्ष पर्यन्त अति जीर्ण अवस्था को प्राप्त होकर भी वेदों का ही अध्ययन करता रहा ऐसी जीर्णावस्था को देख कर भरद्वाज के आश्रम में आकर इन्द्र ने भरद्वाज के प्रति इस प्रकार कहाः—

हे भरद्वाज! जो कदाचित् मैं तुमको आयु का चतुर्थ भाग भी देदूं तो उसमें तुम क्या कार्य करोगे।

इस प्रकार देवराज इन्द्र के वचन को सुन कर भरद्वाज ने उत्तर दिया कि मैं वेदों का ही अध्यन करूंगा तब भरद्वाज की पाठ वासना निवृत्त करने के लिये देवराज इन्द्र ने वेदों को पर्वत करके दिखलाया और जो भरद्वाज ऋषि ने अब पर्यन्त अध्ययन किया था वह उन पर्वत रूप वेदों से एक २ मुष्टि मात्र दिखाया और कहा कि हे भरद्वाज! अब पर्यन्त तुमने इन मुष्टि मात्र वेदों का अध्ययन किया है और यह पर्वत के समान अध्ययन करने को बाकी रहे हैं। इस प्रकार इन्द्र के वचन को सुन कर भरद्वाज की पाठ वासना निवृत्त होगयी तदनन्तर इन्द्र ने भरद्वाज को ब्रह्म विद्या का उपदेश किया।

अर्थ वासना

शास्त्रों के तात्पर्य को न जान कर समग्र आयु पर्यन्त शास्त्रों के अर्थ का अध्ययन करे जाना यह अर्थ वासना है यह अर्थ वासना भी पाठ वासना की भांति दुःसंपाद्य है।

यह अर्थ वासना नारद मुनि को हुई है नारद जी ने १४ विद्यायें अध्ययन की थीं परन्तु इनका शोक निवृत्त नहीं हुआ। तब वे सनकादिकों के पास गये प्रार्थना की कि हे भगवन्! मुझे अध्ययन

सराओ तब सनन्तकुमारो ने कहा कि तुमने अब तक जो कुछ पढ़ा है वह सब सुनाओ तब हम आगे अध्ययन करायेंगे तब नारद मुनि ने जो कुछ पढ़ा था, सो सुना दिया और यह भी कहा कि हे भगवन्! मैंने यह भी सुना है कि आत्मवित् अर्थात् आत्मा का जानने वाला शोकादिकों को तर जाता है और मैं इन सब विद्याओं को जानता हुआ भी शोक करता हूं इसलिये हे भगवन्! आपही मुझे शोक से पार करिये। पश्चात् सनत कुमारों के उपदेश से नारद जी को शान्ति हुई थी।

अनुष्ठान वासना

श्रुति स्मृति रूप शास्त्रों द्वारा विधान किये हुए कर्मों का जो शास्त्र विधि से पुन २ अनुष्ठान करना है इसे अनुष्ठान वासना कहते हैं यह अनुष्ठान करना है इसे अनुष्ठान वासना कहते हैं यह अनुष्ठान वासना राजा निदाघ को हुई है।

ऋभु नाम वाले ऋषि के पुनः २ उपदेश करने पर भी जब निदाघ को ज्ञान नहीं हुआ तब अति क्लेश पाकर सर्व अनुष्ठान का परित्याग करके ऋभु मुनि के उपदेश से ब्रह्मात्मतत्व का साक्षात्कार किया।

अविज्ञाते परे तत्वे शास्त्राधितस्तु निष्फला।
विज्ञाते परेरे तत्वे शास्त्राधीतास्तु निष्फला॥

समस्त आयु पर्यन्त शास्त्रों का अध्ययन करते रहें और परमात्मा तत्व को नहीं जाना तो शास्त्रों का अध्ययन करना निष्फल है और यदि परमात्म तत्व को जान लिया है तो भी शास्त्रों का अध्ययन करना निष्फल है।

अनन्त शास्त्रं बहु वेदि तव्यमल्प अकालो वहवश्चविघ्न।
यत्सार भूतं तदुपासि तव्य हंसो यथा क्षीरमीवांबु विश्रम्॥

शास्त्र अनन्त हैं तथा शास्त्र प्रति पादित पदार्थ भी अनंत है और वह सब पदार्थ थोड़े काल में जाने नहीं जा सक्ते मनुष्य की आयुष बहुत अल्प हैं जिस अल्प आयुष में भी अनेक रोगादिक विघ्न होते हैं ऐसे विघ्न युक्त अल्प आयुष में उन समस्त शास्त्रों का अध्ययन करना तथा समस्त शास्त्रों के अर्थ को जानना सर्वथा अशक्य है।

अतः हंस के समान जलमिश्रित दुग्ध से दुग्ध मात्र को ग्रहण करने की तरह सर्व शास्त्रों के अर्थ को त्याग कर केवल सारभूत जो ब्रह्मात्म अर्थ है वह ही ग्रहण करने के योग्य है।

देहवासना

यह पंच भूतों का बना हुआ जो स्थूल शरीर है इसमें अभिनिवेश करना अर्थात् अपने मांस मय देह में जो मोह है इसको देह वासना कहते हैं।

यह देह वासना दो प्रकार की है एक तो देह विषय है और दूसरी गुण विषय देह सम्बन्धी।

जैसे 'मैं मनुष्य हूं' 'मैं ब्राह्मण हूं' मैं कृष्ण वरण का हूं, मैं गौर वरण का हूं, इत्यादि देह विषयक वासना है।

और दूसरी गुण विषयक देह सम्बन्धी वासना भी एक गुणाध्यन् प्रयुक्त और एक दोष निवृत्ति युक्त।

इस भेद से दो प्रकार की होती है। जैसे गंगा स्नान आदिकों से जो देह में उत्तम गुणों की प्राप्ति की वासना है वह गुणाधान प्रयुक्त वासना कहलाती है।

और शौच आचमनादिकों द्वारा जो देह के दुर्गुणों की निवृत्ति करता है वह दोष निवृत्ति युक्त वासना है।

यह सर्व देह वासना ज्ञान का प्रति बन्ध होने से मलिन वासना ही हैं। अथवा इन लोक वासना, शास्त्र वासना और देह वासना से अन्य भी मलिन

वासना गीता के सोलह अध्याय में 'दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च'।

श्रीभगवान् ने इत्यादि वाक्यों से कथन किया है। अब इन सर्व वासनाओं के निवृत्ति का उपाय शुद्ध वासना का स्वरूप कहेंगे।

अपूर्ण

गृहस्थ धर्म

(ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती)

हमारे पवित्र शास्त्र की यही आज्ञा है कि पति पत्नी दोनों को सर्वदा सलाह करके तथा हिल मिल करके रहना चाहिये। क्योंकि जहाँ दोनों की सम्मति से कार्य होता है उस घर में सच्चा सुख रहता है, इतना ही नहीं उनके लड़के आदि भी उन्हीं के समान भले होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कुटुम्ब, जाति के सुधार तथा ईश्वरीय मार्ग ज्ञान, वैराग्य, भक्ति की नींव जम जाती है। इससे सब लोगों को पति पत्नी का धर्म जान कर उसीके अनुसार चलने की आवश्यकता है।

दैव इच्छा से यदि घर में लड़के अधिक उत्पन्न हो जाँय तो निराश न होकर मन में यह समझना चाहिये कि वे भी अपना भाग लेकर आये हैं तथा उनके भाग से हमारा भी भला होगा ऐसा समझ कर प्रसन्न होना चाहिये।

यदि लड़का न हो तो दुःखी न होना चाहिये क्योंकि यह तो ईश्वर की माया है, इसमें हमारा कोई अधिकार नहीं है। हमारे दुःखी हो कर हाय हाय करने से प्रभु के कर्म का नियम टल नहीं सकता। इससे यदि प्रभु की ऐसी ही इच्छा होतो इसमें भी शान्ति रखनी चाहिये तथा सोचना चाहिये कि लड़कों को पढ़ाने लिखाने की तथा उनमें से अच्छे बुरे निकलने की व्याधा से प्रभु ने हमें बचा रक्खा है और इसके बदले में सत्संग परमार्थ तथा भक्ति करने का अवकाश प्रभु ने दिया है। ऐसा समझ कर प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा समझ कर आनन्द से रहना चाहिये।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पति पत्नी का स्वभाव एक दूसरे से भिन्न होता है। स्त्री चिड़चिड़े स्वभाव की, लोभी, बड़ बड़ाने वाली, संशय वाली, अधिक व्यय करने वाली तथा मूर्ख होती है। इसी प्रकार पुरुष गाली देने वाला, दुर्बल, क्रोधी, धर्म विरुद्ध चलने वाला, बुरे व्यसनों वाला तथा कुटुम्ब से शत्रुता रखने वाला होता है। तो भी शाँति पूर्वक एक दूसरे को निभा ले जाना दोनों का कर्तव्य है, क्योंकि विवाह के पवित्र सम्बन्ध की रक्षा करना यह ईश्वर की आज्ञा है। विरुद्ध स्वभाव के कारण हम विवाह सम्बन्ध तोड़ नहीं सकते और न यह एक दिन की बात ही है। इसी स्थिति में हमें जीवन भर रहना है और जिसका जो स्वभाव पड़ गया है वह थोड़ी देर में बदला नहीं जा सकता। इसलिये विरुद्ध स्वभाव के कारण जीवन भर प्रति दिन हृदय की होली में जलो मत। किन्तु एक दूसरे को निभा कर अपनी आत्मा के कल्याण तथा महान प्रभु के लिये भगवत् इच्छा के आधीन होकर शाँति से रहना सीखो। यदि हाथ जलते हों तो सहलो परन्तु हृदय को कभी किंचित् भी मत जलने दो।

यदि इस प्रकार आनन्द से रहोगे तो हमारा दृष्टांत देख कर हमारे लड़के भी सुधरेंगे, किन्तु यदि हम अपना स्वभाव वश में नहीं रखेंगे और कटु वचन या मार पीट करेंगे तो हमारा भविष्य तो बिगड़ेगा ही साथ ही साथ हमारे लड़कों का

भी जीवन बिगड़ेगा। ऐसा न होने देने के लिये पति पत्नी को एक दूसरे की भूल को न देख कर शान्ति पूर्वक रहना चाहिये।

पति पत्नी को जिस प्रकार एक दूसरे के स्वभाव को निभा लेजाना चाहिये, वैसे ही अचानक आने वाली घटना जैसे कि कंगाली दुर्भाग्य तथा कुटुम्ब में कभी कभी आ पड़ने वाले दुःखों के समय भी धैर्य रखना चाहिये और भीम, नल, युधिष्ठिर, राम, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज आदि की कथा पढ़ कर चित्त को शान्त करना चाहिये। ऐसे समय पर एक दूसरे को ताना न मार कर किसी के हृदय को न दुखा कर जिस प्रकार प्रभु रखे उसी प्रकार मिल झुल कर रहने में ही उत्तमता है। यही स्त्री पुरुष का धर्म है। और ऐसे संकट के समय हम एक दूसरे के साथ जिस प्रकार व्यवहार करते हैं प्रभु भी वैसे ही हमारे साथ बर्तता है। इससे ऐसे समय में धैर्य धर कर जैसे हो तैसे स्त्री पुरुष को एक दूसरे से निभा लेना चाहिये।

इसके अतिरिक्त भविष्य में क्या होगा तथा हमारे लड़के बच्चों का क्या होगा? आदि विचारों से स्त्री पुरुष दुःखी हुआ करते हैं और अपनी आयुष्य को आधा कर डालते हैं, किन्तु यह विचार नहीं करते कि जो प्रभु अनन्त काल से अनन्त ब्रह्मांड को चला रहा है और हमारा भी अभी तक पालन करता जाता है वह सर्वशक्तिमान जगत् पिता हमारे लड़कों का भी पालन करेगा ही, क्योंकि वह अपने जनों का सदा बहुत ख्याल रखता है, ऐसा समझ कर तथा विश्वास रख कर स्त्री पुरुषों को सदा आनन्द में रहना चाहिये।

बाजे की एक कल बिगड़ने से जैसे सब मंडली का रस उड़ जाता है और जैसे अग्नि की चिनगारी से बड़ी भारी आग लग जाती है, वैसे ही यदि कुटुम्ब में कोई मनुष्य बहुत लोभी, क्रोधी, व्यभिचारी या कोई प्रकार का दुर्गुण वाला हो तो वह कुटुम्ब को दुःख देता है, इससे किसी भी प्रकार के दुर्गुण में न फंसने का स्त्री पुरुष दोनों को ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि हमारा पाप केवल हम ही को दुःखी करके नहीं रुक जाता किन्तु उसका छींटा बहुत दूर तक उड़ता है। देखो दुर्योधन और रावण के दृष्टान्त को। इससे हमारे दोष के कारण दूसरों को क्लेश न पहुंचे, इसका ध्यान रखना प्रत्येक स्त्री पुरुष का कर्तव्य है।

हमको समझना चाहिये कि यह कुछ देवताओं के रहने की अमरावती नहीं है किन्तु मनुष्य के रहने का मृत्युलोक है, इससे यहां भिन्न भिन्न स्वभाव, रोग, जंजाल तथा दुःख आदि अवश्य रहेंगे किन्तु इन सभी के बीच धर्म का बल रख कर तथा प्रभु पर दृढ़ विश्वास रख कर शांति पूर्वक आनन्द से रहने में ही हमारी विशेषता है और यही गृहस्थ का धर्म है।

धर्मराज युधिष्ठिर आदि का वृत्तांत जगत्प्रसिद्ध है। धर्म की रक्षा करने वाले को कभी कष्ट नहीं होता यह भगवान् का वाक्य है। एक समय महर्षि दुर्वासा दस हजार शिष्यों के साथ वन में युधिष्ठिर के पास पहुंचे। अतिथि को देख कर श्रीमान् युधिष्ठिर भाइयों के साथ अपने आसन से उठ खड़े हुए और आगे बढ़ कर महर्षि को ले आये। आसन पर बैठा कर विधि पूर्वक पूजा करके युधिष्ठिर ने कहा, ब्रह्मन् स्नान संध्यादि कर आइये और भोजन कीजिये। दुर्वासा तो इसलिये आये ही थे, इन्होंने विचारा भी नहीं कि युधिष्ठिर इस समय दस हजार शिष्यों को किस प्रकार कहां से भोजन करावेगा। शिष्यों सहित नदी पर चले गये।

इधर पतिव्रता द्रौपदी बड़े असमंजस में पड़गई। बहुत सोच विचार करने पर भी जब उसे अन्न प्राप्त करने का कोई उपाय न सूझ पड़ा, तब वह घोर चिंता में पड़ कर अशरण शरण उसी चीर बढ़ाने वाले मोर मुकुट धारी बनवारी श्रीकृष्ण का स्मरण करने लगी। द्रौपदी कहने लगी हे श्रीकृष्ण हे महाबाहो! हे देवकी नन्दन! अच्युत! वासुदेव! जगदीश्वर! प्रणत पुरुषों के संकट काटने वाले! विश्व रूप! विश्व के विधाता! विश्व का संहार करने वाले! प्रभु प्रणत पाल! गोपाल! प्रजा पालक! तुम सब से परे परमात्मा हो। आकुति और चिति नाम की चित्त की वृत्तियों के प्रवर्तक तुम ही हो। मैं तुमको प्रणाम करती हूं। बस आप समझ लीजिये आप अन्तर्यामी हो मैं क्या कहूं? भगवान् देव देव जगदीश्वर जान गये। अचिन्त्य गति श्रीकृष्ण उस समय पलंग पर रुक्मिणी के पास बैठे थे, सो उन्हें वहीं छोड़ कर आप दौड़े हुए द्रौपदी के पास पहुंच गये। उन्हें देखते ही द्रौपदी के हर्ष का ठिकाना न रहा। विदुरानी का सा हाल होगया भगवान् ने एक कण भर साग खाकर कह दिया कि इससे विश्वरूप और यज्ञ के अधिपति देव प्रसन्न और तृप्त हों।

दुर्वासा और उनके शिष्य जल में गोता लगा कर "अघमर्षण कर रहे थे उसी समय उन्हें अजीर्ण की डकार आई और पांडवों के धर्म के भय से उनसे बिना पूछे ही झट पट भाग गये। इधर पांडवों को चिंतित देख कर श्रीकृष्ण ने कहा "हे महाभाग्य पांडवो! वे तुम्हारे तेज और प्रताप से डर कर भाग गये हैं। जो लोग सदा धर्म का पालन करते रहते हैं वे कभी संकट में नहीं फंसते, तुम्हारा नित्य कल्याण हो, अब मैं अपनी नगरी को जाता हूं।

सारांश यह है कि उपर्युक्त दृष्टांत के अनुसार जो सदैव धर्म का पालन करते हैं उनको कष्ट कभी स्पर्श नहीं कर सकता। जिस कुटुम्ब में छोटे बड़े सब एक दूसरे के साथ मन्त्रणा करके कार्य करते हैं, जिनमें किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं वास करता और जो अपने धर्मानुसार चल कर जिस प्रकार प्रभु रखता है आनन्द से रहते हैं वे इस संसार में ही रह कर अपने घरमें ही स्वर्ग के समान सुख भोगते हैं और अन्त में अमर पति भवन में वास करते हैं।

महात्मा तुलसीदास जी

[ले० श्री शोभाराम जी धेनुसेवक]

(१)

निरख कर नर जीवन म्रियमाण।
किये थे किसने जीवित प्राण॥
सिखा था तप्त हृदय को त्राण।
कहाँ से हुआ विश्व कल्याण॥
कौन था वह? भर कर उल्लास।
कहा प्रकृति ने, तुलसीदास॥

(२)

देख कर जग को प्रेम विहीन।
बजाई विश्व प्रेम की बीन।
कहा जिसने क्यों होता दीन?
मनुज बिन प्रेम वारि का मीन॥
प्रभो! बसते प्रेमी के पास।
कहा जग ने धनि "तुलसीदास॥

(३)

शिक्षामय किस के संदेश?
मिटाते नर जीवन के क्लेश।
कौन थे भारत भाग्य दिनेश?
अमर कवि [illegible] राकेश॥

प्रगट कर के अद्धा विश्वास ।
कहा जग ने थे "तुलसीदास" ॥

(४)

जिन्होंने मनुज मात्र को मान ।
दिया है नव जीवन का दान ॥
दिखा कर के आलोक महान ।
नशाया दुखद तिमिर अज्ञान ॥
बुझाई ! प्रेमी उर की प्यास ।
जिन्होंने थे वे "तुलसीदास" ॥

(५)

अलख निर्गुण को सगुण ललाम ।
बनाना था तेरा ही काम ॥
रमा था घट २ में जो राम ।
अवध में उसको आठों याम ॥
खिलाया ! दुनियां का इतिहास ।
तुम्हीं ने बदला "तुलसीदास" ॥

(६)

बहाई काव्य सुधा की धार ।
हुआ जिससे प्लावित संसार ॥
एक स्वर से जग को स्वीकार ।
हुए तुलसी तेरे उपकार ॥
धन्य वह तेरा पुण्य प्रयास ।
धन्य तुलसी के तुलसीदास ॥

(७)

डूब जाती "हिन्दुत्व" जहाज ।
यहां क्या हिन्दू दिखते आज ॥
अगर वह कवियों का सर ताज ।
न रखता हिन्दू पन की लाज ॥
धर्म धन का हो जाता ह्रास ।
बचाते ! अगर न तुलसी दास ॥

(८)

विश्व की तुम थे भूति महान ।
किया था जग ने उसका मान ॥
जन्म का देकर तुमको दान ।
आज है गर्वित "हिन्दुस्थान" ॥

× × + ×

कला कविता ने पूर्ण विकास ।
किया था ! तुम ने तुलसीदास ॥

ज्ञान

[ले० श्री मदन लाल जी पोद्दार]

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

"ज्ञान" शब्द संस्कृत के "ज्ञा" धातु से बना है और इसका अर्थ हिताहित तथा सत्यासत्य को भली प्रकार जानना ही है । इसके आशय को महात्मा दादूदयाल जी ने अपने निम्नलिखित दोहे में पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है ।

अर्थ आया तब जानिये, तब अनरथ छूटे ।
दादू भाण्डा भरम का, चौदे पड़ फूटे ॥

जिस समय सांसारिक मोह अथवा अज्ञान से उत्पन्न हुवे सर्व संशयों का छेदन हो जाय तथा जिस काल में मृगतृष्णा के जल सदृश सब भ्रमों का भाण्डा (मिट्टी का घड़ा) फूट जाय, तब ही ज्ञान प्राप्त हुआ समझना चाहिए । उस समय ज्ञान होने के कारण अपना यथार्थ स्वरूप तथा सत्यासत्य और हिताहित का प्रकृत भेद दर्पण में चहरे की तरह दीखने लग जाता है । तब अपने अनरथ अर्थात् शास्त्र प्रतिकूल कर्म असह्य हो उठते हैं और उनके फन्दे से छूट कर जल्दी अच्छे कर्तव्यों में प्रवृत्त

होने की चेष्टा करनी पड़ती है। फिर आचरण सुधरते तनिक भी विलम्ब नहीं हो सकता। इसीलिये महात्मा दादू दयाल जी ने उन्हीं को ज्ञानी निश्चय किया है, जिनके आचरण सुधर गए हों तथा जिनके मन में किसी प्रकार का संशय न रह गया हो ऐसे ज्ञानी महात्मागण ही अपने शरणागत भवरोगी को अच्छी तरह से स्वस्थ्य कर सकते हैं। वे अपना समय व्यर्थ नष्ट न करके अपने को अपना शत्रु नहीं बनाते। वे तो अपना तथा दूसरों का उद्धार करने में ही तत्पर रहते हैं और अपने को अपना बन्धु ही बनाने की चेष्टा करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अज्ञान को अनार्य वा असभ्य लोगों से पालित, शिष्टगणों से त्यागा हुआ, स्वर्ग अर्थात् कल्याण की प्राप्ति में बाधा डालने वाला और अपयश का बढ़ाने वाला बतलाया है (गीता २-२ पशुओं में केवल ज्ञान के अभाव से ही इतने अत्याचार होते हैं और वे ज्ञानी मनुष्य की तरह अपना कल्याण नहीं कर सकते। अज्ञानी, संशयों से भरे हुए और बिना श्रद्धा वाले लोग नष्ट हो जाते हैं। (गीता ४-४०) वे अपना किसी तरह भी उद्धार नहीं कर सकते। उद्धार करने का केवल एक मात्र साधन है-ज्ञान। भवसागर से पार होने के लिये ज्ञानरूपी एक ही नौका है। इस संसार में ज्ञान के सिवाय और कुछ भी अच्छा नहीं है। इसी से कामादि षट् रिपुओं के हाथों से मनुष्य बच सकता है। ज्ञान ही से अपने कर्मों को भस्म करके मनुष्य पुनः जन्म मरण से बच सकता है। क्योंकि जन्म मरण रूपी अंकुर पैदा करने वाले कर्म रूपी बीजे ज्ञान रूपी अग्नि में भुन जाते हैं। वे फिर उग नहीं सकते। विकट मोह वन की भुल भुलैयां में भटकते हुए जीव रूपी पथिक को सच्चा मार्ग बताने वाला ज्ञान ही एक मात्र गाइड (पथ दर्शक) है। जन्म २ में फिरते हुए जीव को मनुष्य देह में अपना कल्याण करने का केवल एक ही साधन प्राप्त है। वह यथार्थ ज्ञान के सिवाय और कुछ भी नहीं है। ज्ञान से ही मनुष्य अपना तथा दूसरों का भवबन्धन तोड़ सकता है। साथ २ अपने अन्य कर्तव्य पालन करके शरीर यात्रा को सफल कर लेता है। महापापी होने पर भी मनुष्य यदि किसी तरह महात्माओं के सत्संग द्वारा यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाय तो वह पाप सागर से ज्ञान रूपी नाव के द्वारा पार हो सकता है। ज्ञान से सत्यासत्य और हिताहित के मालूम होने पर मनुष्य अपने असली मार्ग को जान जाता है। तब वह मन रूपी घोड़े की संयम रूपी लगाम को पकड़ कर सवार हो जाता है और अपना मार्ग तय करने में तत्पर रहता है। फिर वह अपने अभीष्ट स्थान परमधाम को अवश्य ही पहुंच जाता है।

ज्ञान के प्रत्येक इच्छुक में सर्व प्रथम पात्रता होनी चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा जब मनुष्य में उत्पन्न हो जाती है और जिस समय वह गुरु की खोज में फिरता है अथवा किसी महात्मा का आगमन सुन कर उनसे सत्संग करने दौड़ता है तब ही वह ज्ञान का पात्र बनता है। ज्ञान का पात्र होने पर अनुभवी महात्माओं के दर्शन तथा उपदेश से उनके भीतरी ज्ञान चक्षु उघड़ जाते हैं और उसको सत्यासत्य का ज्ञान होने लगता है। अनुभवी महात्माओं के पास न पहुंच सकने की अवस्था में उनकी लिखी हुई सदुपदेश प्रदायिनी पुस्तकें भी बहुत कुछ सहायक होती हैं। उनके द्वारा हम प्राचीन तथा वर्तमान काल के अनेक महात्माओं से संगमलाभ कर सकते हैं। उनके अमृतमय उपदेश पान कर हमारे नेत्र और हृदय परितृप्त हो जाते हैं। समझ कर श्रद्धा सहित सद्ग्रंथों का अवलोकन

करने से हमें शान्ति प्राप्त होती है और हमारे ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं। हम में कितने दोष हैं, हम कितनी भूलें करते हैं तथा हम कैसे असत्य वस्तु को लेकर धनवान बन बैठे हैं यह सब बातें महात्मा लोगों के चरित्र तथा उनके सदुपदेशों को ध्यान से पढ़ते समय हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से नाचने लग जाती हैं। सद्ग्रन्थों के पढ़ने तथा महात्मा लोगों से सत्संग करने के पश्चात् मनन करना चाहिए अर्थात् अपने संशयों को काट कर तथा झूठी तर्कों (मन की) को विचार पूर्वक हटा कर मनमें जमा लेना चाहिए। मनन करने पर निदिध्यासन करना चाहिए। अर्थात् ज्ञान रूपी उजाले में जागते रहना चाहिए तथा अपने ज्ञान चक्षुओं को बन्द करके विषय निद्रा में सोना नहीं चाहिये। ज्ञान दीपक के उजाले में जाग्रत रह कर काम क्रोधादि को फटकने नहीं देना चाहिए। यही निदिध्यासन है। निदिध्यासन से अपने अन्तर में छिपे हुए चोरों को पकड़ २ कर संयमरूपी जंजीरों से जकड़ देना ही ज्ञान की असली अवस्था है। इतना अर्थात् सत्संग या सद्ग्रंथावलोकन, मनन तथा निदिध्यासन के करने पर ही मनुष्य यथार्थ रूप से ज्ञानी बन सकता है।

ज्ञान प्राप्त करने का एक और सुगम उपाय है। भगवान का श्रद्धा सहित भजन करना। प्रेम पूर्वक हरि कीर्तन करने से भी मोह निद्रा टूट कर ज्ञान की जागृति हो जाती है। भगवान ने गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा है:-

तेषामेवानुकं पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ (गीता १० ११

"उन (मेरे भक्तों) पर अनुग्रह करने को ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञानोत्पन्न अन्धकार को प्रकाशमय ज्ञान दीपक से नष्ट कर देता हूं।

अस्तु! अब प्रेमी पाठकों से त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थना करता हुआ विनय पूर्वक निवेदन करता हूं। कि मोह निद्रा में सोते हुए लोग अपने ज्ञान चक्षु खोल कर सचेत हो जायें तथा अनुभवी महात्मागण अपने अनुभवों को प्रकाशित करा के तथा भगवच्चर्चा करके हम सोते हुओं को जाग्रत तथा कृतार्थ करें। भगवान कहते हैं:-

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥
न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥

(गीता अ० १८–६८,६९)

"जो इस परम गोपनीय ज्ञान को मुझ में प्रेम कर के मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझे प्राप्त होगा। और मनुष्यों में उसके बराबर न तो कोई अधिक प्रिय कर्म करने वाला ही होगा और न कोई दूसरा मुझे अधिक प्यारा होगा।"

स्मृति पर आंसू।

(ले० श्री पं० राम विलास शुक्ल)

जब कभी हृदय आपकी शुभ स्मृति में लीन हो जाता है। अनेकों शुभा शुभ विचार उत्पन्न होते हैं। हृदय दग्ध हो जाता है, आपकी याद आ जाती है। अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है। मन मयूर नाचने लगता है ऐसे ही अवसर की स्मृति में, अपने प्यारे भक्तों के लिये भगवान! आपको कष्ट उठाना पड़ता है।

भगवन्! आप कितने ही निष्ठुर हों, किन्तु

जब हमारे ऊपर कष्ट पड़ता है, अत्याचार होते हैं आपकी प्यारी गौयें दुःखित होकर कातर स्वरों में पुकारती हैं ऐसे अवसर पर आपके हृदय को हमारे अविरल अश्रु पिघला ही देते हैं।

नाथ! क्या वह समय दूर है जब आप अपने भक्तों की रक्षा के लिये आयेंगे? अपनी दुःखित बृज भूमि को, जो आज पाप के भारी भार से बोझिल है पवित्र बनायेंगे।

प्यारे कृष्ण! जिन गौओं को आप बृज की पवित्र कुञ्जों में स्वयं चराते थे, जिनकी रक्षा को आप स्वयं निर्जन बनों में भ्रमण कर स्वयं अनेकों कष्ट उठाते थे, वे ही आज आपकी शुभ-स्मृति में प्रमत्त हो कारुण्य दृगों से अविरल अश्रु बहा रही हैं। आज ऐसे कष्ट के समय आप कहां विश्राम कर रहे हैं। किन्तु नहीं! नहीं!! आप अवश्य हमारे चिन्तन में लीन होंगे।

हम आपकी पुण्य स्मृति को कष्टों में ही ग्रहण करते हैं सुखों में नहीं, यह वास्तव में हमारी भूल है। किन्तु नाथ, क्षमा! क्षमा!!

क्या आप अपना नाम जपाने के लिये ही कष्ट देते हो नहीं, नहीं? यह हमारे ही कर्मों का फल है। आप का यह विचार स्वप्न में भी न होगा। नाथ! आप मेरे सर्वस्व हैं, आप मेरी रक्षा करते हैं, आप ही मेरे हितू हैं। अब तो जो कुछ भी हैं आप ही हैं। तो फिर खरी खोटी किसे सुनायें नाथ! जब आप ही सर्वस्व हैं तो हम ज़िद भी करते हैं, गुण गाते हैं, मनौती मनाते हैं। नाथ!

किन्तु, कुछ नहीं सब कल्पित, सब झूठ सब मुँह देखे की क्या सब आडम्बरीय ठाठ हैं। हां यदि सत्य है तो, हमारा यह अधःपतन क्यों! ऐसी दुर्दशा क्यों!! परन्तु हाँ, ज्ञान होगया। यह सब आप की विमुखता के महत्वपूर्ण परिचय हैं। यह सब हमारे कल्पित व्यवहारों की पोल खोल रहे हैं, हमें नीचा दिखा रहे हैं तथा दुःख का ग्रास बना रहे हैं।

यदि हम आपके द्वारा-सिखाये हुये कर्मों, बताये हुये धर्मों, तथा श्रवण की हुई शिक्षाओं का उपयोग न करें तो हमें आपका भक्त बनना, हितु कहना, करुणा दिखाने का, आप से किसी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ने का कदापि अधिकार नहीं है।

नाथ! आओ, अवश्य आओ। हम कितने ही चिर-युगों से आपकी नवीन स्मृति बार बार मनाते हैं। अपने जीवन में सदैव उस दिन की स्मृति करते आये हैं और करते रहेंगे जिस दिन आपने इस भूमि को निज चरणों से पवित्र किया था। भार हटाया था, भक्तों के तृषित नेत्रों का आनन्द पहुंचाया था सदैव मनाते आये हैं, और मनाते रहेंगे और प्रति वर्ष आप की पुण्य स्मृति में दो चार आंसू बहाते रहेंगे।

भजन

हमते कछु सेवा न भई।
धोखे २ रहे धोखहि जाने नहिं त्रिलोक मई।
चरण पकरि करि बिनती करिबो सब अपराध क्षमा कीजे
ऐसो भाग होइगो। कबहुं श्याम गोद में लीबे॥
कहैं नन्द आगे ऊधो के एक बेर दर्शन दीबे॥
सूरदास स्वामी मिलि अबके सबै दोष गत कीबे॥

२

ऊधो कहा करैं लै पाती।
जब नहिं देख्यो गुपाल लाल को बिरह जरावत छाती
जानति हौं तुम मानती नांही तुमहूं श्याम संघाती॥
निमिस २ मो बिसरत नाहीं शरद सुहाई राती॥
यह पाती लै जाहु मधुपुरी जहं बसे श्याम सजाती॥

मनुज हमारे जहाँ लैगये काम कठिन सर घाती ॥
सूरदास प्रभु कहा चलत हो कोटिक बात सुहाती ॥

३

यहि अन्तर मधुकर इक आयो।
निज स्वभाव अनुसार निकट होई सुन्दर शब्द सुनायो
पूछन लागि ताहि गोपिका कुबिजा तोहि पठायो ॥
कीधौं सूर श्याम सुन्दर को हमैं सन्देशो लायो ॥

४

सुनहु गोपी हरि को संदेश।
करि समाधि अन्तर गति ध्यावहु यह उनको उपदेश॥
वे अविगति अविनाशी पूरण सब ठार रहे समाई ॥
निर्गुण ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं तप वेद पुराणन गाई ॥
सगुण रूप तजि निर्गुण ध्यावो, इकचित इकमन लाई ॥
यह उपाय करि विरहतरो तुम मिले ब्रह्म तब आई ॥
दुसह संदेश सुनत माधो को गोपीजन बिलखानी ॥
सूर विरह की कौन चलावे बूड़त मीन बिन पानी ॥

५

ऊधो मन न भये दसबीस ॥
एक हुतो सो गयो श्याम संग, को अवराधे ईश ॥
सबही शिथिल भई माधो बिन, ज्यों देही बिन शीश ॥
सूरदास वा रस की महिमा ज्यों पूछै जगदीश ॥

६

मधुकर श्याम हमारे चोर।
मन हरलियेा तनक चितवन में चपल नैन की कोर ॥
पकरे हुते ओर उर अन्तर प्रेम प्रीति के जोर ॥
गए छुड़ाई तोरि सब बन्धन दै गये हंसनि अकोर ॥
चौंकि परि रैन सी वीती दूत मिल्यो मोहिभोर ॥
सूरदास प्रभु सर्वस लूट्यो नागर नवल किशोर ॥

७

ऊधो योग योग्य हम नाहीं ॥
अबला सार ज्ञान कहा जानैं कैसे ध्यान धराहीं ॥
ये तो मूंदन नैन कहत हैं हरि मूरत जा मांही ॥
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमते सुनी न जाहीं ॥
श्रवण चीर अरु जटा बन्धावहु ए दुख कौन समाहीं ॥
चन्दन तजि अंग भस्म लगावत बिरह अनल अति दाही
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपुमांही ॥
सूरश्यामते न्यारे न पल छिन ज्यों घट तें परछाहीं ॥

८

हमते हरि कबहुक न उदास ॥
रास खिलाई पिआई अधररस क्यों बिसरत ब्रजवास ॥
तुम तो प्रेम कथा का कहिबो मनहु काटिबो घास ॥
बहिरो गान स्वाद कहा जाने गूंगो बात मिठास ॥
सुनरी सखी बहुरि हरि एहैं वह सुख बड़े विलास ॥
सूरदास ऊधो हमको अब भए तेरहौं मास ॥

९

तेरो बुरो न कोउ माने।
रसकी बात मधुपनि रस सुनि रसिक होई सो जानै॥
दादुर बसे निकट कमलन के जन्मन रस पहिचानै॥
अलि अनुराग उड़त मन बान्धो कही सुनत नहि कानै
सरिता चली मिलन सागर को कूल सबै द्रुम मानै ॥
कायर बकै लोभ ते भागै लरै सो सूर बखानै ॥

१०

मधुकर जानत है सब कोऊ ॥
जैसे तुम अरु सखा तुम्हारे गुणन आगरे दोऊ ॥
सुफलक सुतकारे अरु शिवते कारे तुम और दोऊ॥
सर्वस हरन करत अपने सुख कोउ कितो गुण होऊ॥
प्रेम कृपण थोरे चित चपुरी उबरत नाहिन सोऊ ॥
सूर सनेह करै जो तुमसों सा पुनि आयु बिगोऊ ॥

——